अंतोन चेखोव

एक इंटरव्यू



राजेंद्र यादव

1955

प्रकाशन संस्थाकी ओरसे

हमारे प्रकाशन की यह चौथी पुस्तक है, जो तरुण प्रसिद्ध कथाकार श्री राजेन्द्र यादव जी की हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिक देन है। संसार के श्रेष्ठ कथाकार चेखव के इस दार्शनिक इन्टरव्यू में लेखक ने उनके जीवन के जो चित्र उपस्थित किये हैं आशा है वे साहित्य-सेवियों और साहित्य-प्रेमियों के लिये उपन्यास से कम रोचक और जीवन में कम प्रेरणादायक सिद्ध नहीं होंगे। परिस्थिति और संघर्ष के बीच निखरता हुआ चेखव का विशेष व्यक्तित्व उनकी लेखनी में समाविष्ठ होकर मानव-भावना का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें संदेह नहीं कि पुस्तक का कलेवर लघु है लेकिन इस लघुता में ही लेखक की महानता सन्निहित है।

आशा है, पाठक इस पुस्तक से यथेष्ठ लाभ उठायेंगे।

एण्टन पाव्लोविच चैख़व : एक इण्टरव्यू



हमारे प्रकाशन :

- संन्यासी और सुन्दरी — ले०—यादवेन्द्र नाथ शर्मा 'चन्द्र'
- अँखियाँ निहार के !
पग धूरि झार के !! — ले०—बरूआ
- दीया जला ! दीया बुझा !! — ले०—यादवेन्द्र नाथ शर्मा 'चन्द्र'
- एण्टन चैखव : एक इन्टरव्यू — ले०—राजेन्द्र यादव



एण्टन चैखव : एक इण्टरव्यू

(जो केवल पचास वर्ष का अन्तर पड़ने से नहीं हो सका)

लेखक :
राजेन्द्र यादव



प्रकाशक :
रामपुरिया प्रकाशन,
३ उडबर्न रोड,
कलकत्ता—२०

प्रकाशकीय सम्पादक:
यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र'

प्रकाशकीय व्यवस्थापक :
ललित कुमार शर्मा 'ललित'

आवरण मुद्रक :
वर्मन एण्ड कम्पनी,
२४, ब्रेबोर्न रोड,
कलकत्ता।

प्रथम संस्करण १०००, जनवरी, १९५५ ई०

मुद्रक :
एच० सी० अग्रवाल,
विश्वमित्र प्रेस,
७४, धर्म तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता।

यह काल्पनिक इण्टरव्यू

चैखव के सम्बन्ध में और चैखव की कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध रचनाओं पर आधारित यह "इन्टरव्यू" हिन्दी की वर्त्तमान स्थिति के परिपार्श्व में उनके जीवन और साहित्य की एक रूपरेखा है। प्रश्नकर्ताओं के सिवा, इसका कोई भी चरित्र या वर्णन काल्पनिक नहीं है, यहाँ तक कि मैंने चैखव से मिलने का समय भी वही रखा है जब डाक्टरों ने कुछ दर्शनार्थियों को उनसे मिलने की आज्ञा दे दी थी।

शायद हम उदीयमान लेखकों के लिए काम की और सचेत पाठकों के लिये एक रोचक चीज है।

टालस्टाय, गोर्की एन्द्रीव का समसामयिक यह कथाकार व्यक्ति के रूप में भी कितना महान था—यही वह चीज थी जिसने मुझे उधर आकर्षित किया। उन्होंने खुलकर अपनी कमियों और कमजोरियों को स्वीकार किया और बेलाग होकर बड़े से बड़े लेखक की आलोचना की। उनका झुकाव यद्यपि थोड़ा कलावादी कहा जाता है; लेकिन उनके यथार्थ की पकड़ की तारीफ समाजवाद के बड़े-बड़े नेताओं को आज करनी पड़ती है। किसी जीवन-दर्शन का उनके सामने न होना उनकी सबसे बड़ी कमजोरी रही, इसे उन्होंने स्वयं माना है, इसलिये आज की बौद्धिक चेतना को सजग करने में वह गोर्की के मुकाबले नहीं ठहरते, फिर भी निर्विवाद रूप से आज की कहानी के तीन पिताओं—ओ हेनरी, मोपासां और चैखव में उन्हीं का स्थान सबसे ऊंचा है। इस क्षेत्र में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

'चैखव' के जीवन के सम्बन्ध में लिखे गये अपने स्कैच को इसमें शामिल किये जाने की आज्ञा दे देने के लिये मैं श्रद्धेय बनारसीदासजी चतुर्वेदी का बहुत ही कृतज्ञ हूँ। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार अभिन्न श्री यादवेन्द्र नाथ शर्मा 'चन्द्र' का सबसे अधिक आभारी हूँ, और ललित जी के श्रम से तो यह कृति अपने इस कलेवर में आप तक आ ही रही है।

५१६१, राजामण्डी
आगरा
१०—१२—५८

—राजेन्द्र यादव

लेखक की अन्य रचनायें

१	रेखाएं, लहरें और परछाइयाँ	(कहानी संग्रह)
२	देवताओं की मूर्त्तियाँ	(")
३	खेल खिलौने	(")
४	प्रेत बोलते हैं	(उपन्यास)
५	उखड़े हुए लोग	(")



एक महीने की दक्षिण-यात्रा की याद में
आदरणीय श्री अमृतलाल नागर को,
जीवन और लेखन दोनों दृष्टियों से जिनकी तस्वीर
मेरे मानसिक चैखव से काफी मिलती है।

चैखव : बड़ों की निगाह में

"अभी मैंने करीब-करीब पूरे चैखव को दुबारा पढ़ा....उसकी हर चीज आश्चर्य-जनक है....चैखव एक ऐसा कलाकार है जिसकी किसी भी पहले रूसी लेखक से तुलना नहीं की जा सकती --चाहे वह तुर्गनेव, दोस्ता-यव्स्की हो या मैं खुद होऊँ ।"

— टाल्सटाय

"बेहद सादा, जैसा वह (चैखव) खुद था उसी तरह हर सादा, सत्य और सहृदय वस्तु को प्यार करता था...... हर उस चीज से घृणा करते हुए जो गंदी है, कुत्सित है उसने जिन्दगी की सारी अधमताओं को, एक कवि की शिष्ट भाषा में --एक व्यंगकार की मधुर मुस्कान के साथ अंकित कर दिया है ।"

— गोर्की

"आज के सारे महत्वाकांक्षी नये लेखक चैखव को आदर्श मान कर चलते हैं ।"

— समरसैट माम

"मानव हृदय की गूढ़ गम्भीर भावनाओं, भावों की सबलता, विविधता और सादगी को चित्रित करने की दृष्टि से चैखव की टक्कर का लेखक अभी तक इस नक्षत्र पर पैदा नहीं हुआ ।"

— राबर्ट लिंड

"चैखव का नाम अत्यन्त प्रिय और यशस्वी नामों में से है और रूसी लोग सदा उस पर अभिमान करते रहेंगे ।"

— स्तालिन

अमर कथाकार चैखव

—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

एक बार मैंने प्रेमचन्दजी से पूछा—"संसार का सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक कौन है ?" उन्होंने तुरन्त ही बिना किसी संकोच के उत्तर दिया —"चैखव" ।

केवल प्रेमचन्द जी ही नहीं, अन्य कितने ही विद्वान और आलोचक चैखव को कहानी लेखकों का शिरोमणि मानते हैं ।

उनका जन्म सन् १८६० में हुआ था और मृत्यु सन् १९०४ में हुई थी । उनके जीवन के इन ४४ वर्षों में से अधिकतर घोर संघर्ष में ही बीते । घर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी और पिताजी का स्वाभाव बड़ा कठोर था । पिताजी ने उनको, जबकि वह बहुत छोटे थे, कोड़े से पीटा था और इस दुर्घटना को चेखव कभी नहीं भूल सके । अपने छोटे भाई को उन्होंने सन् १८८९ में लिखा था —"भाई, इस बात को न भूलो कि अत्याचार और असत्य ने हमारी माता के यौवन को नष्ट कर दिया । अत्याचार और असत्य ने ही हमारी बाल्यावस्था को भी बरबाद कर दिया । याद तो करो, उस वक्त हमलोगों को कितनी घृणा और कितना भय होता था जबकि पिताजी भोजन के समय माताजी को 'बेवकूफ' की उपाधि सिर्फ इसलिये दे डालते थे कि उनके ख्याल से दाल-साग में नमक ज्यादा पड़ गया था । किसीपर भी जुल्म करना एक हद दरजे का जुर्म है ।"

चैखव छः भाई-बहन थे । दो भाई उनसे बड़े थे और एक बहन तथा दो भाई उनसे छोटे । विद्यार्थी जीवन में चैखव को काफी परिश्रम करना पड़ा । वह ट्यूशन करके अपनी गुजर-बसर करते थे और इसलिये पढ़ाई में भी बाधा पड़ती थी । उन्होंने इसीलिए दरजी का भी काम सीखा

पर वह प्रयोग एक साल से अधिक न चल सका। इन कठिनाइयों के कारण स्कूल में उनके दो वर्ष ही बरबाद हो गये।

चैखव नें वयोवृद्ध सुवोरिन को एक पत्र में लिखा था —"संसार में पेट भरने के लिये संघर्ष के बराबर नीरस और उबा देनेवाली कोई दूसरी चीज नहीं हैं। इससे जीवन में कोई आनन्द नहीं रह जाता और उदासीनता छा जाती है।" गोर्की ने एक जगह पर चेखव के सस्मरणों में लिखा है—

"युवावस्था में चैखव को जीवित रहने के लिए भीपण संवर्ष करना पड़ा, नित्य-प्रति की रोटी के लिये चिन्ता करनी पड़ी—अपने लिये और दूसरों के लिये भी। युवावस्था की सारी शक्ति उन्हें इन्हीं चिन्ताओं में गुजार देनी पड़ी। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना सब होते हुए भी अपने अन्दर हास्य को कैसे सुरक्षित रख सके।"

सन् १८८३ में उन्हें १२० कहानियाँ और रेखाचित्र इसलिए लिखने पड़े कि वह अपने भाई-बहनों का पालन पोषण कर सकें।

अपनी रचनाओं को कभी-कभी वह बड़ी हिकारत की निगाह से देखते थे। एक बार तो उन्होंने यहां तक लिख दिया कि उनमें भी एक पंक्ति ऐसी ऐसी नहीं है, जिसका साहित्यिक दृष्टि से कुछ मूल्य हो। यह बात १८८९ की है जबकि वह काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। उनकी इस सम्मति के मूल में एक तो विनम्रता थी और दूसरे हर रचना को ऊँचे मान दण्ड से जांचने की प्रवृत्ति। शब्द जंजाल से उन्हें बड़ी घृणा थी और एक बार तो गोर्की को उन्होंने यह उपदेश दिया था कि वह अपनी रचनाओं में सरलता लायें।

पर चैखव जितने बढ़िया लेखक थे उससे कहीं अधिक उच्च कोटि के वह सहृदय मनुष्य थे। गोर्की ने अपने सस्मरणों में एक जगह लिखा है—

"एक दिन चैखव ने अपने गाँव में मुझे निमंत्रित किया। वहाँ उनके पास जमीन का एक छोटा-सा टुकड़ा था और एक दुमंजिला मकान। उसे दिखाते हुए वह बोले—"मेरे पास पर्याप्त धन होता तो मैं इस स्थान पर

बीमार ग्रामीण अध्यापकों के लिये एक सैनिटोरियम (स्वास्थ्यागार) बनवा देता। खूब रोशनीदार एक भवन बनवाता जिसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ होतीं और बहुत ऊँची छत होतीं। इस भवन में मैं एक बढ़िया पुस्तकालय स्थापित करता। सब प्रकार के वाद्ययंत्र रखता और नाना प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध कर देता। साग-भाजी पैदा करने के लिये एक बाड़ी होती और फलों का एक बाग भी। शिक्षकों को सब कुछ जानना चाहिए--सब कुछ मेरे प्यारे मित्र !

"एकाएक वह रुके, उन्होंने खखारा और फिर मेरी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। तब बोले--'मेरे हवाई किलों से तुम ऊब तो नहीं रहे ? लेकिन मुझे इस विषय पर बातचीत बहुत पसन्द है। रूसी ग्रामों के लिये बुद्धिमान और सुशिक्षित अध्यापकों की बड़ी भारी जरूरत है। इसकी ओर हमें खास तौरसे ध्यान देना चाहिये और जल्दी से-जल्दी इसका प्रबन्ध होना चाहिये। बिना समुचित शिक्षा के हमारा राष्ट्र कच्ची ईंटों के मकान के समान ध्वंस हो जायेगा। अध्यापकों को कलाकार होना चाहिये। उन्हें अपने काम से प्रेम होना चाहिये। लेकिन हमारे देश में उनकी स्थिति अकुशल मजदूर की तरह है। वे अर्द्धशिक्षित हैं, स्कूल जाते समय उनके मनमें वही भावना होती है जो किसीके मनमें देश-निकाले के वक्त होती होगी। बिचारा भूखों मरता है, दबोचा हुआ रहता है और हर वक्त उसे अपनी नौकरी से छूटने का खतरा बना रहता है। लेकिन हमें आज ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जो ग्रामवासियों का नेतृत्व कर सकें, किसानों के तमाम सवालों का जवाब दे सकें और जिन्हें ग्रामीण समाज श्रद्धा तथा सम्मान की दृष्टि से देखे।"

चैखव ने आज से ६०-६५ वर्ष पूर्व रूसी ग्रामीण अध्यापकों की दुर्दशा का जो चित्र खींचा था वह भारतीय मुदर्रिसों पर कितना फिट बैठता है !

चैखव में हास्य की प्रवृत्ति बड़ी जोरदार थी और वह घोर संकट में भी मुस्करा सकते थे, यहाँ तक कि अपनी मृत्यु के कुछ घंटे पूर्व उन्होंने

हास्यरस की एक कहानी प्रारम्भ की थी और अपनी खाट पर बैठकर वह खूब खिलखिला कर हंसे भी थे ।

गोर्की ने उसकी हास्य-प्रवृत्ति का एक मजेदार किस्सा लिखा है। एक बार महुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित तीन महिलाएं उनके यहाँ आईं और उनसे यूनान तथा तुर्क देश के युद्ध के विषय में अनेक प्रश्न करने लगीं ।

उनका प्रश्न था—युद्ध के अन्त के बारे में आपकी क्या राय है ?

चैखव—मेरे ख्याल में युद्ध के अन्त में शान्ति होगी ।

प्रश्न—जीत किसकी होगी, यूनानियों की या तुर्कों की ?

उत्तर—मेरी समझ में जो अधिक शक्तिशाली होगा वही विजयी होगा ।

प्रश्न—आपकी राय में कौन अधिक शक्तिशाली है ?

उत्तर—वही जो अधिक मेहनती और शिक्षित है ।

दूसरी महिला का प्रश्न था—आपको कौन अधिक पसन्द है, यूनानी या तुर्क ?

चैखव ने मुस्करा कर उत्तर दिया—मुझे तो मन्तरे की चटनी सबसे अधिक पसन्द है और आपको ?

महिला ने उन्मुक्त हृदय से उत्तर दिया—बहुत ज्यादा ।

तीसरी महिला बोली—कितनी बढ़िया खुशबू उसमें आती है ?

गरज यह कि युद्ध के बजाय वे तीनों महिलाएँ मन्तरे की चटनी पर अपना सारा ज्ञान उँड़ेलने लगी ।

चैखव की कहानियों में जो मधुर व्यंग्य पाया जाता है, वह उनके स्वभाव के अनुरूप ही था। चैखव को क्षुद्रता से घृणा थी, गन्दगी से नफ़रत थी और अपने देश की काहिली पर वह करारी चोट करने से कभी न चूकते थे। हाँ, श्रम के प्रति उनके हृदय में अनन्त श्रद्धा थी। एक

बार उन्होंने कहा था—"यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने हिस्से की ज़मीन को यथा-शक्ति सुन्दर बनाने की कोशिश करे तो यह पृथ्वी कितनी मनोहर हो जाये।"

बकौल गोर्की के चैखव का विश्वास था कि संस्कृति का मूल आधार शारीरिक श्रम है। उनका यह विश्वास उनके छोटे से-छोटे घरेलू कामों में भी व्यक्त हो जाता था। वह सृजन करते थे, बाग लगाते थे, पृथ्वी का शृंगार करते थे। श्रम में निहित काव्यानन्द को वह पहचानते थे। अपने लगाये वृक्षों तथा पौधों के बारे में वह बड़ी सावधानी रखते थे।

चैखव की रचनाओं में एक नये तथा गूढ़ तत्व का समावेश हुआ—उसे भावी सुखका देशके जीवन में एक महान परिवर्त्तन का पूर्वाभास हो गया। यदि आप समुद्रतट पर स्थित किसी नगर में रहते हों तो आपको समुद्र के सामीप्य का सदैव आभास रहता है, चाहे वह आपकी दृष्टि से ओझल ही क्यों न रहता हो। उसी प्रकार पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक तथा नई शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लिखी गयी चैखव की कहानियों को पढ़ कर आपको हमेशा उसकी उदासी के पीछे जीवन के अमर श्वास के स्पन्दन का आभास मिलता है। चैखव की रचनाओं की काव्यमयता की गहराइयों में, उसके चढ़ाव-उतार में, उसके संगीत में, हमें "सौंदर्य तथा यौवन और प्रस्फुटित होती हुई शक्तियों की 'विजय' का स्वर सुनाई देता है; हमें अपनी "गौरवशाली तथा रुक्ष सौन्दर्य से परिपूर्ण मातृभूमि" ("दि स्तेपी") का चित्र दिखाई देता है।

एक अन्य कहानी में एक पात्र के मुंह से उन्होंने कहलाया है—

"रूसी जीवन कितना समृद्ध तथा वैचित्र्यपूर्ण है! हां सचमुच कितना समृद्ध! आप जानते हैं कि जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते हैं मेरा यह विश्वास अधिक पक्का होता जाता है कि हमलोग किसी महानतम विजय के द्वार पर खड़े हैं, और मैं उसे देखने के लिये जीवित रहना चाहता हूँ और उसमें स्वयं भाग लेना चाहता हूँ।" उपवनों के प्रति चैखव के हृदय में

विशेषतः आकर्षण था और उन्होंने एक जगह कहा था –"चार सौ वर्ष बाद यह समस्त संसार ही उपवन का रूप धारण कर लेगा ।"

चेंखव के जीवन काल में भी रूस में काफी क्रांतिकारी कार्य हो रहे थे, पर उन्होंने उनमें कोई भाग न लिया । माता सरस्वती की सेवा वह अनन्य श्रद्धाके साथ करते रहे और इसी में उन्होंने अपना कल्याण समझा । इनके विपरीत गोर्की ने निरन्तर क्रान्तिकारी लोगों का साथ दिया । 'स्वधर्मे निधनं श्रेय' चैखव ने अपना धर्म साहित्य सेवा मान लिया था और उसीका वह पालन करते रहे । आगे चलकर सुप्रसिद्ध आस्ट्रेलियन लेखक ज्विग ने भी इसी नीति का अनुसरण किया ।

चैखव को अपनी शक्ति का एक अच्छा भाग डाक्टरी में बिताना पड़ा था । उन्होंने एक जगह लिखा था –"डाक्टरी तो मेरी विवाहिता स्त्री है और साहित्य-सेवा मेरी रखैल औरत । जब मैं एक से ऊब जाता हूँ तब तब दूसरी के पास चला जाता हूँ । इस बात से मुझे सजीवता और प्रसन्नता प्राप्त होती है कि मेरे पेशे दो हैं –दो वृत्तियाँ हैं ।"

आलोचकों के प्रति चेखव का जो भाव था, वह भी सुन लीजिये–

"आलोचक लोगों का स्वभाव डांस से मिलता जुलता है । घोड़ा खेत में कड़ी मेहनत करता है; शरीर का प्रत्येक अंग वीणा के तार की तरह यथाशक्ति योग दे रहा है, तभी एक डांस आकर घोड़े के पुट्ठे पर बैठ जाता है और भनभनाना और डँक मारना शुरू कर देता है । घोड़ों को पूंछ फटकारनी पड़ती है । अब बताइए डांस का वहाँ क्या काम है ? उसे कुछ भी ज्ञान नहीं, लेकिन वह अस्थिर चित्तवाला जीव है, जो हरेक काम में अपनी टांग अड़ाता है और लोगों को जबर्दस्ती बतलाना चाहता है कि इस पृथ्वी पर उसका भी अस्तित्व है । वह मानों कहता है –देखो मैं जितना भी चाहूँ भनभना सकता हूँ ! अपनी कहानियों की आलोचनाएं देखते-देखते मुझे पच्चीस वर्ष हो गये, लेकिन मुझे याद नहीं कि एक भी ढंग की हो । केवल स्काविचवेस्की से मैं थोड़ा प्रभावित हुआ था, क्योंकि

उसने मेरे बारे में लिखा "यह लेखक एक पियक्कड़ आवारा हो जायेगा और इसकी मौत किसी नाली में होगी।"

चैखव यद्यपि राजनीति में प्रत्यक्ष भाग नहीं लेते थे पर उनका हृदय स्वदेश के आंदोलन के प्रति स्पन्दनशील अवश्य रहता था। सन् १९०१ में लिखे "तीन बहनें" नामक नाटक में एक पात्र के मुख से उन्होंने कहलवाया है—"समय आ गया है। एक भयंकर प्रबल तूफान उठने वाला है। यह तूफान हमारी तरफ बढ़ता आ रहा है, यह हमारे बहुत निकट आ पहुँचा है और शीघ्र ही हमारे समाज के काहिली, उदासीनता, श्रम के विरुद्ध भावना तथा सड़ी-गली उकताहट को एक झोंके में उड़ा देगा।"

चैखव की भविष्यवाणी सच निकली। पहला तूफान सन् १९०५ में आया और दूसरा १९१७ में।

चैखव ने पृथ्वी पर जिम सुख-सौन्दर्य तथा न्याय के स्वप्न देखे थे, वे यद्यपि अभी अधूरे ही हैं—स्वयं उनके देश में भी वह स्वर्ग स्थापित नहीं हो सका—तथापि हम लोगों को उस महान रूसी लेखक के प्रति ऋणी और कृतज्ञ होना चाहिए,जिसने कठोर से-कठोर परिस्थितियों में भी साहित्य साधना के महान व्रत को जारी रखा और जिसने निराशा के घोर अंधकार में भी आशा की झलक हमें दिखायी। विश्व के कहानी-लेखकों में सर्वोच्च स्थान पा लेना किसी महान तपस्या का ही परिणाम हो सकता उस तपस्वी की पचासवीं श्राद्ध-तिथि पर हम उसे प्रणाम करते हैं।

इण्टरव्यू

मॉस्को की सरदी और दिन छिपे का समय था। गज़ब का कोहरा पड़ रहा था। हमलोग इसके जरा भी अभ्यस्त नहीं थे; हालांकि जून का महीना था, लेकिन हमारे यहां तो भरपूर जाड़ों में भी इससे थोड़ा कम ही जाड़ा पड़ता होगा। इस समय निकलने की हिम्मत नहीं हो रही थी, खासतौर से किसी भले आदमी से मिलने में तो मौत सी लगती थी। चेखव की तबियत बहुत अधिक खराब है, यह मैं सुन चुका था। पहले भी दो एक बार मिलने की कोशिश की, लेकिन उनकी बीमारी की वजह से संभव नहीं हो सका। तीन हफ्ते पहले ही वे याल्टा से आये थे और डाक्टरों की सलाह थी कि उन्हें पूरी तरह आराम मिलना चाहिये। इसके अगले ही दिन वे स्वास्थ्य सुधारने के विचार से बेदिनवीलर के स्वास्थ्य-केन्द्र के लिये जर्मनी जा रहे थे, अतः जैसे तैसे हमने उनसे मिलने को एक घण्टे का समय निश्चित कर लिया था। निरंजन इस बात से नाराज था कि एक लेखक वायसराय की तरह इतना प्रयत्न करके मिले। वह बार-बार कहता—"छोड़ो भी, क्यों इतनी मुसीबत उठा रहे हो? चलो कहीं रेस्त्रां वगैरा में बैठें।" मैंने उसे समझाया—"भाई तुम मुझे बताओ, टाल्स-टाय के अलावा इस समय कौन इतना बड़ा लेखक रूस में है? गोर्की..... भले ही समझ लो। रही मिलने की बात! सो एक तो वे इतने बीमार हैं, दूसरे, हमारे यहाँ ही देखो, जिसने दो किताबें लिख लीं, घर के दरवाजे पर मिलने के समय का बोर्ड लटका दिया। और कहीं वह लेखक किसी छोटे मोटे प्रदेश का मंत्री हो गया तो फिर बात ही क्या—उसे तो तुम नैपोलियन समझो।" तो खैर, हमलोग अपने अपने ओवरकोटों... में इस तरह लिपटे हुए थे कि चैखव की कहानी "खोल में आदमी" बार बार याद आ रही थी। निश्चित जगह पर पहुँच कर हमने घण्टी बजाई, तो वही लम्बा चौड़ा तुर्क मुस्तफ़ा प्रगट हुआ। इसे हिन्दुस्तान की बातें सुना

सुना कर हमने काफी जान पहचान कर ली थी। यह बड़ा ही खुशमिजाज था और याल्टा से चैखव के साथ ही यहा आया था।

मुस्तफा हमारा कार्ड लेकर भीतर गया ही था कि दरवाजा खोलकर एक ऊंचा लम्बा तगड़ा कंजी आँखों वाला आदमी निकला और हमसे यह कह कर कि, "वे अभी आपको बुलाते हैं" एक ओर चला गया। यह आदमी हमें कुछ पहचाना हुआ सा लगा, लेकिन याद नही आया। सूरत शक्ल से आवारा-सा लगता था। मैं और निरंजन उसके बारे में बातें कर ही रहे थे कि फिर मुस्तफा आया। कुछ गैलरी, कुछ सीढ़ियाँ पार करके हम एक कमरे के दरवाजे पर पहुंचे। मुस्तफा ने दरवाजा खोल दिया और हम लोगोंने भीतर प्रवेश किया।

सामने ही गद्दी से लदे हुए सोफे पर ओवरकोट या ड्रेसिंग गाउन पहने एक पतली दुबली मानव मूर्ति बैठी थी, पैरों पर एक कम्बल पड़ा था, यही चैखव थे। देखने में बहुत छोटे और उनके कन्धे बड़े सिकुड़े हुए थे। बड़ा ही रक्तहीन चेहरा—उनके चित्रों से मिलाकर देखने पर जिसे पहचानना बड़ा ही कठिन था। शायद इतने परिवर्तन की तो हमलोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे। कमरे में एक खिड़की के सहारे एक बिस्तर बिछा था और एक ओर लिखने की मेज पर हरे शेड वाले टेबिल-लैम्प की रोशनी में एक महिला मूर्ति बैठी किसी पत्रिका के पन्ने पलट रही थी। लैम्प की हरी रोशनी में साँझ का धुंधलापन डूबता जा रहा था।१

"आइये!" बड़े निर्जीव स्वर में उन्होंने स्वागत में हाथ बढाया वह पतला-दुबला और झुर्रियोंदार हाथ,—उस ओर देखने में न जाने कैसा-कैसा लगता था? आँखों की चमक और मुस्कुराहट गायब हो चुकी थी। उनके संकेत पर हमलोग सामने पड़ी कुर्सियों पर बैठ गये। हमने हाथ जोड़कर उनका अभिनन्दन किया था।

वे मुस्कुराकर बोले—"तो आप हिन्दुस्तान से आ रहे हैं?"

प्रौफेसर रोसोलिमो और निकोलाय तेलेशोव के वर्णनों के आधार पर।[1]

"जी !" मंने इस डर से कुछ संकुचित स्वर में उत्तर दिया कि इतने अधिक अस्वस्थ व्यक्ति से अधिक प्रश्नोत्तर करना व्यर्थ ही कष्ट पहुंचाना है ।

इस पर वह कुछ विचित्र तरह हँस पड़े, बोले —"उत्तरी हिन्दुस्तान से न ?—बस वही जगह देखने की मेरी बड़ी आकांक्षा थी, लेकिन उस समय इतनी जल्दी में था कि लंका से ही लौट आना पड़ा ।" और फिर जैसे पलकें बन्द करके किसी चीज को कल्पना में देखकर वे स्वयं ही हंस पड़े— "वह भी क्या देश है ? सिंगापुर का तो मुझे याद नहीं है; क्योंकि तब मेरी तबियत काफी खराब थी । दूसरे हमलोगों ने दो व्यक्तियों को पानी में डाला था वे लोग 'मीसिकनैग' से मर गये थे—आह, वह दृश्य! जब एक क्षण पहले हंसता बोलता आदमी सफेद कफन में लपेट कर पानी में फेंक दिया जाता है और जो शायद समुद्र की मीलों गहराई में पैठता चला जाता है । मेरी इच्छा तो बुरी तरह चीख पड़ने की हो रही थी.........।"१

"शायद यही दृश्य आपके 'गुसीव' कहानी की प्रेरणा है ?" मैंने बीच में बात काटी । इतने बीमार आदमी को इतने उत्साह से बातें करते देख कर हमारा संकोच स्वयं मिट गया । बाद में सुना कि यह चैखव का स्वभाव था । अपनी मृत्यु से सिर्फ तीन चार मिनट पहले वे ओल्गा-निपर को ऐसी मजेदार कहानी सुना रहे थे कि वह लोट पोट हो गयी थीं । हमने एकबार उस महिला की ओर देखा, वह पत्रिका में लीन थी । फिर बोला—"हैमक में लटका हुआ गुसीव जब समुद्र में फेंक दिया जाता है, मछलियाँ लड़कर उसे खा जाती हैं ।"

"गुसीव.....? हां, योंहीं ।" उन्होंने बात टाल कर पहली बात जारी रखी "क्या कह रहा था मैं ? —हाँ, हिन्दुस्तान का तो सिर्फ वही हिस्सा देख पाया, लंका —आह ! बिल्कुल स्वर्ग जैसा है ! कोलम्बो में उतर कर रेल मे मैंने वहाँ की सौ मील धरती देखी थी, उस अनुभव को कह नहीं

---

९ दिसम्बर १८९० को सुवोरिन को पत्र ।[१]

सकता। मैंने उस वक्त किसी को लिखा भी था कि ऐसे सुन्दर दृश्यों के लिये मैं शायद अपने आपको राक्षसों को भी बेच देता।" फिर वे खुद ही कोई बात याद करके बड़े जोर से हँस पड़े—"आपको पता है मैंने सुवोरिन को क्या लिखा था ?" वह फिर हँसे—"मैंने लिखा था कि जब मेरे बच्चे हो जायेंगे तो मैं गर्व से उनसे कहूँगा—'अबे गधो, अपने जमाने में मैंने एक काली आँखोंवाली हिन्दू लड़की से भी प्रेम किया है—कहाँ ? एक चांदनी रात में और उस जगह जहाँ नारियल के पेड़ आपस में गुंथकर कुंज-सा बना लेते हैं। समझे ?....क्या बेवकूफी थी ?'

हमने देखा कि वह बीमार व्यक्ति पुरानी स्मृतियों के बीच में पुनः स्वस्थ हो उठा था। हमलोग इन्टरव्यू लेने आये थे अतः उनकी मानसिकता के इस 'प्रवाह' को रोकना उचित न समझा। निश्चय किया कि इसी में से आवश्यक प्रश्न उठाएंगे। अँधेरा अब इतना बढ़ गया था कि एक दूसरे के चेहरे दिखाई नहीं देते थे।

"ओल्या, जरा बत्ती जला दो।" चैखव ने उस महिला की ओर मुड़कर कहा,—फिर हमारी ओर देखकर बोले —"आप इनसे तो परिचित नहीं होंगे न !"

हमलोगों ने नकारात्मक सिर हिलाया। उस महिला ने उठकर बत्ती जला दी। वह एक साया पहने थी। उसका सौंदर्य दूर से ही आकर्षित करता था। उसने जैसे सख्त अनिच्छा से हमारी ओर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। हमें उसका यह व्यवहार बड़ा ही विचित्र लगा।

"ये हैं मेरी पत्नी ओल्गानिपर। 'मॉस्को आर्ट थियेटर' की सबसे बड़ी अभिनेत्री।" फिर पत्नी की ओर देखकर जैसे उसे मनाते हुए हँस कर बोले —"आज ओल्या मुझसे बहुत नाराज है ! अभी जरा देर पहले लेखक तेलेशोव आये थे, उनसे मैंने कह दिया था बातों-बातों में कि मैं कल जा रहा हूं कहीं मरने के लिये। बस, इसी बात पर नाराज है कि मैंने ऐसा क्यों कहा............?"

हमने एक बार फिर महिला के मुंह की ओर देखा,इस बात पर अपने पति को वर्जन करती उसकी तीखी दृष्टि हमसे बच न सकी। उसने कस कर मुंह बन्द कर लिया था और मुख-मुद्रा कठोर बना ली थी।

"अब आप ही सोचिये", चैखव कह रहे थे –"जिस व्यक्ति को दिन में दो बार खाँसी के साथ ढेर सा खून जाता हो—बचपन से ही जो चार दिन लगाकर स्वस्थ नहीं रह पाया हो—जिसका नतीजा है कि वह चौव्वालीस साल में चौरानवे साल का लगता हो, पिछले साल डाक्टर ओस्त्रोमीव ने जिसके फेफड़े में टी. बी. बता दी, दाहिना तो बहुत खराब बताया—प्लूरिसी बताई और भी न जाने क्या बना डाला,१ उसके कहने के अनुसार तो मुझे याल्टा से मास्को भी नहीं आना-जाना चाहिये, अब आप ही बताइये, ऐसे आदमी के मरने का क्या ठीक ? इनका कहना यह है कि आपको जब डाक्टर ने मना कर दिया है तो चुप बैठिये। आप सच मानिये राजेंद्र जी, मैं बिना बोले नहीं रह सकता। और फिर अब तो बाहर जा रहा हूं—सबसे हँस बोल लें, पता नहीं फिर कब मिलना हो। ओल्या, तुमने मरते हुए आदमी से बँधकर अच्छा नहीं किया।"

"मैं कहती हूँ आप चुप रहिये।" –इस बार उस महिला ने ज़रा तेज़ और अधिकारपूर्ण स्वर में कहा। अब उस महिला की उपेक्षा और उदासीनता को हमने समझा।

"अच्छा भाई, अब चुप हुआ जाता हूं, नहीं कहूंगा कुछ; लेकिन तुम रूस की सबसे प्रसिद्ध अभिनेत्री थीं, चाहती तो रूस के बड़े से बड़े आदमी के साथ शादी कर डालतीं, लेकिन तुमने चुना एक फटीचर लेखक।" फिर अपनी मज़ाक खत्म करके बोले –"कुछ चाय-कॉफी तो इन्हें पिलाओ, क्या कहेंगे यह हिन्दुस्तान में जाकर ?" फिर हमारी ओर देखकर कहा—"आप जानते हैं इन्होंने मुझसे शादी कैसे की ?"

१चैखव का डाक्टर स्त्रेदिन को ४ जून का पत्र।

"नहीं, यह तो हम खुद ही पूछने वाले थे।" हम प्रसन्न हो उठे। वह महिला बाहर चली गयीं।

"शायद दिसम्बर १८९८ की बात है, दो साल पहले मेरा नाटक "समुद्री चिड़िया" बुरी तरह स्टेज पर फेल हो चुका था। दूसरी बार जब वह 'मॉस्को आर्ट थियेटर' में स्टैनिस्लेव्स्की वगैरा के द्वारा खेला गया तो बेहद सफल रहा; लेकिन उसके और 'शो' इसलिये नहीं चल सके कि आर्कदीना का अभिनय करनेवाली लड़की अचानक अस्वस्थ हो गयी—खेल स्थगित हो गया। मुझे बहुत ही गुस्सा आया। यह मेरा दुर्भाग्य ही रहा है कि जब-जब मेरे खेल स्टेज पर गये हैं उनके साथ कुछ न कुछ गड़बड़ी रही है। थियटर का और मेरा तो कुछ छत्तीस का सम्बन्ध है।१ लेकिन उत्सुकता मुझे तभी से थी कि देखें ऐसी नाजुक मिज़ाज़ कौन सी लड़की है। देखा मैंने इसे उस समय जब मॉस्को में मेरे लिये 'समुद्री चिड़िया' को व्यक्तिगत रूप से खेला गया। इससे पहले मैं याल्टा में तड़पता रहता था, डाक्टरों ने जाड़ों में जाने को मना कर दिया था, इसलिये उन्हें गालियां दिया करता था। फिर तो ओल्गानिपर मुझे इतनी अच्छी लगती थी कि मुझे मॉस्को में न रहना अपनी बेवकूफी लगता।२ इसके बाद जब मॉस्को आर्ट थियेटर को मैंने "वान्या चाचा" दिया तब "समुद्री चिड़िया" के सभी पात्रों के साथ एक फोटो-ग्रुप हुआ। मैं निपर की ओर खिचता गया। उन्हीं दिनों तीन दिन वह "मिलीखोवो" में भी मेरे साथ रही। फिर तो समझिये कि बीच की दूरी कम होती ही गयी; लेकिन विवाह के मैं शुरू से ही खिलाफ़ था........।"

"क्यों, तो क्या आप लोगों ने विवाह नहीं किया?"—निरंजन पूछ बैठा। हमलोग ध्यान से उनकी बातें सुन रहे थे।

"नहीं, शादी हमलोगों ने तीन साल पहले २५ मई १९०१ में

हैलेन शावरोव को पत्र।[1] फरवरी १९०० में मेरी को चैखव का पत्र।[2]

की, लेकिन विवाह के विषय में मेरे विचार बड़े विचित्र थे। पहले जब मैं अपने 'गिलीखोवो' के मकान में रहता था और मेरा विचार था कि शादी जरूर होगी, लेकिन जो लड़की मुझसे विवाह करेगी उसे मॉस्को में ही रहना होगा। मैं गाँव में रहूंगा। जो जैसा है वैसा ही रहेगा, उसमें जरा भी परिवर्तन नहीं होगा। मैं कभी कभी उससे मिलने मॉस्को पहुँच जाया करूँगा; क्योंकि प्रसन्नता का इतना बोझ, सुबह से शाम और शाम से सुबह तक की प्रसन्नता का बोझ, सहने में मैं असमर्थ हूं। अपने वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में जब लोग रोज-रोज मुझसे एक ही बात कहते थे तो मैं खीझ उठता था। मुझे तो चांद जैसी पत्नी की आवश्यकता है जो आसमान में रोज-रोज न दिखाई दे।"[१]

"और अब ?—"मैं प्रश्न किये बिना न रह सका।

"अब भी यही बात है। ओल्या मॉस्को में काम करती है और मैं यहां कभी कभी आ जाता हूं या यही वहां याल्टा पहुँच जाती है। हमलोग कभी एक दूसरे के लिए बाधा नहीं बनते। वैसे एक दूसरे के बारे में हमलोग उदासीन हों, ऐसा ज़रा भी नहीं है। मैं ज़रा भी बीमार हो जाऊं तो ओल्या पत्रों में उपदेशों का ढेर लगा देती है। और पिछले दिनों तो बापरे बाप! इसने मेरी आफत कर दी—'तुम लिख नहीं रहे हो कुछ, कुछ लिखो न, लोग यह समझते हैं मुझसे विवाह करके ही तुमने लिखना बन्द कर दिया है। मेरे लिये लिखो डार्लिंग।' और भी न जाने क्या क्या लिख मारती थी! इसकी यह ज़िद ही तो है जिसकी वजह से मुझे झुकना पड़ता है। मेरे पीछे ही पड़ गयी कि हमलोग सम्मिलित जीवन शुरू करें—तब हमारी शादी हुई। और आपको सुनकर ताज्जुब होगा सिर्फ चार आदमी थे उस समय मेरे अपने परिवार का तो कोई था ही नहीं। मॉस्को के एक छोटे से गिरजे में हमारी शादी हुई

सुवोरिन को पत्र।[१]

और सुहागरात मनायी गयी एक्जेनोवो के सैनिटोरियम में; क्योंकि मेरी तबियत खराब थी। अब हम जा रहे हैं कल बेदिनवीलर के स्वास्थ्य केंद्र में।"

तभी नौकरानी ओल्गा ने हमारे सामने छोटी-छोटी मेजें लाकर रख दीं और उनपर कॉफी के प्याले आ गये। चैखव सोफे पर जरा आराम मे लेट गये। हमने बात वहीं से पकड़ी –"यह बीमारी, लगता है आपके पीछे शुरू से ही पड़ी रही। क्या यह पैतृक थी ?"

"हाँ, बीमारी से लड़ना मेरा स्वभाव हो गया है। बिल्कुल ऐसा लगता है कि एक राक्षस है जो हमेशा मेरे सामने रहता है कभी वह मुझे पछाड़ देता है–कभी मैं उसपर चढ़ बैठता हूं। मोरोजोव की जमींदारी में जब मैं तिखोनोव के साथ था, तब तो इसने मुझे पीस ही डाला था। उस समय तो मैं करीब बेहोश ही हो गया था। दो साल पहले की तो बात ही है, लेकिन आप समझ लीजिये मैं इससे आजतक नहीं हारा। एक नहीं, दर्जनों बीमारियां मेरे पीछे लगी रहीं–सबसे भयंकर है यह खूनी बवासीर।१ कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगने लगता था जैसे मनुष्य का जीवन खतरों, बीमारियों, मुसीबतों और गन्दगियों से ही बना है जो या तो इकट्ठी टूट पड़ती हैं या फिर एक-एक करके हमला करती हैं। फिर भी मुझे लगता था जो लोग मृत्यु से डरते हैं वे ज्यादा समझदारी की बात नहीं करते।२ इस तरह मैं बीमारी से लड़ा हूं।" और जैसे विजय के गर्व की एक मुस्कान उनके होठों पर आ गयी। कॉफी का एक घूंट भरकर बोले–"आपने पूछा, क्या यह बीमारी पैतृक थी ? फिर जैसे डूबकर कहा–"आप शायद नहीं जानते हमारे बाप-दादा गुलाम थे, मेरे दादा, मिखायलोविच चैखव ने जेनरल चैरत्कोव को ३५०० रूबल देकर अपनी स्वतंत्रता खरीदी थी, इसके अलावा वे हमारे पिता पावेल चैखव के लिये इतनी सम्पत्ति छोड़

१८९२ को शैश्तैल को पत्र।[1] मेरिया किसेलेव को पत्र।[2]

गये कि एक अच्छी दूकान चल सके। हमलोग पांच भाई और एक बहन हैं–(एक भाई मर गया) १७ जनवरी १८६० को मेरा जन्म तागनरोग में ही हुआ था। उस समय तो मैं समझ नहीं पाता था, लेकिन आज जब उसका विश्लेषण करता हूं तो चीज मेरे सामने बिलकुल साफ़ हो गई है। मेरे पिता को एक 'मेनिया' था। चूंकि उन्होंने अपने जीवन में ही गुलामी के दिन देखे थे और अपने जीवन में ही वे रईस बने. इसलिये वे हमेशा बड़े रौब से बाहर निकलते थे –बिलकुल टिप-टॉप ! साथ ही अपने नौकर चाकरों से भी उसी तरह का व्यवहार करते थे जैसा उनके मालिक लोग उनसे किया करते थे। स्वाभाविक था कि जब उन्होंने जनरल चैरत्खोव से सारी आदतें ली थी, तो पीटने की आदत कैसे नहीं लेते ? हमलोगों को वे इस बुरी तरह पीटते थे कि आज भी याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यही मार थी जिसने मेरे दो बड़े भाइयों, 'अलैक्जैन्द्र' और 'निकोलस' को भयंकर रूप से शराबी बना दिया और मेरी आत्मा पर एक ऐसा घाव छोड़ दिया कि मैं आजतक उसकी पीड़ा को अनुभव करता हूं। पहला कारण तो मेरे अस्वास्थ्य का यह है।" कहकर साँस लेनेके बहाने उन्होंने कॉफी का प्याला मुंह की ओर बढ़ाया।

तभी मैंने सवाल कर दिया–"यह तो मैं मानता हूँ कि एक प्रतिक्रिया ने जहां आपके पिताजी को इतना क्रूर और दुर्दान्त बना दिया था, वहां दूसरी ने आप में खी मानवता के प्रति एक ऐसा प्रेम भर दिया जो आपकी रचनाओं का मूल स्रोत बन गया....।"

"बीच में बात काटने के लिये क्षमा कीजिये" –एकदम वे बोले– "शायद मैंने इसी सम्बन्ध में सुवोरिन को लिखा भी था कि यदि तुम लिख सकते हो तो एक ऐसे लड़के की कहानी लिखो, जिसे जिन्दगी में सिवा दुख के कुछ नहीं मिला–अच्छा खाना नहीं मिला, मार के सिवा कभी प्रेम से | किसी ने बात नहीं की। स्कूल में हमेशा फेल होता रहा और अछूत की तरह माना जाता रहा। यह मेरा बचपन था।"

"हाँ, मेरा खयाल है अपनी 'तीन वर्ष' शीर्षक लम्बी कहानी में आपने लैवितन के बचपन के चित्रण में वही अनुभव दिया है....।"

"हां", मैंने उनकी बात को स्वीकार करके अपनी बात जारी रखते हुए कहा —"लेकिन आपके पिता के इस व्यवहार ने उनके प्रति आपका रुख क्या बना दिया ?"

"खैर जाने दीजिये, यह बचपन की बात थी। उस समय तो मैं यह सोचता था कि अपने पिता की इस हंटरों की मार के लिये मैं कभी भी उन्हें क्षमा नहीं कर सकूंगा। लेकिन सत्रह साल की उम्र तक पहुंचते पहुँचते मैं अपनी गलती महसूस करने लगा था। मैंने अपने चाचा मिखायल से कहलवाया भी था कि जब तुम पिताजी से मिलो तो कह देना कि 'मुझे उनका पत्र मिल गया है और मैं बहुत कृतज्ञ हूं। संसार में माँ और उनके सिवा एक भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसके प्रति मैं इतना कृतज्ञ हूं। उनके लिये मैं सबकुछ कर सकता हूं। अगर मैं कभी बड़ा आदमी बना तो इसका कारण सिर्फ वे ही होंगे। उनका अपनी सन्तान के प्रति प्रेम और हजारों मुसीबतों में भी हमारी शिक्षा-दीक्षा के लिये प्रयत्न—यह सब उन्हें उनकी हर कमी से ऊपर उठा देते हैं,'१ लेकिन तब भी मुझे स्वीकार करना पड़ता है, बचपन में मेरे साथ इतना क्रूर व्यवहार हुआ है कि जहाँ भी जरा-सी समवेदना मिली, मुझे कुछ असाधारण अस्वाभाविक-सा लगने लगता था। इसीने मुझे इतना सुस्त बना दिया।"२ फिर एक साँस लेकर बोले —"बचपन के भी क्या दिन थे, हँसी आती है। पिताजी धार्मिक शिक्षा देने के मामले में बड़े कट्टर थे। जब मैं छुटपन में प्रार्थनाएं गाता, या कहिये मुझसे गवाई जातीं तो सबलोग प्रशंसा से देखते, लेकिन मुझे ऐसा लगता जैसे कोई कैदी खड़ा हो। और आप देखिये, इन धार्मिक शिक्षाओं की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। धर्म के नाम पर बच्चों

---

२ जुलाई १८७७ को मिखायल को पत्र।[१] व्लादीमीर तिखोनोव को पत्र।[२]

को कितनी यातनाएं दी जाती हैं,लेकिन जब वे समाज में आते हैं तो लोग मुस्कुराते हैं, प्रशंसा करते हैं। मेरा तो विश्वास यह है कि धार्मिक शिक्षा से कभी भी बच्चों का भला नहीं होता। यही वजह है कि बड़े-बड़े धार्मिक वातावरण में पले हुए लोग आगे जाकर भयंकर नास्तिक बन जाते हैं। मेरा आज धर्म क्या है ? कुछ नहीं।"१ इस बार उन्होंने कॉफी खत्म कर दी। फिर जैसे याद करते हुए कहा —"हाँ, मैं क्या कह रहा था ?"

"कि आपके निरन्तर अस्वास्थ्य का पहला कारण तो यह वातावरण था..........।"— निरंजन ने याद दिलाया।

"हां ठीक", इस बात से प्रसन्न होकर कि हमलोग काफी ध्यान से उनकी बात सुन रहे हैं, वे बोले —"दूसरा कारण है मेरा निरन्तर संघर्ष ! आप समझिये,मुझे अपने आलसीपने से शिकायत रही, मैं अपने को निकम्मा कहता था लेकिन इतना बड़ा परिवार और आर्थिक तंगी मुझे हमेशा मारती रही। एक दिन भी मै आराम नहीं कर सका........।"

"अभी तो आपने बताया कि आपके दादा काफी पैसा छोड़ गये थे।" —बीच में ही निरंजन बोला।

"यह तो ठीक है, लेकिन बीच में जब काफी कर्जा हो गया तो सब कुछ छोड़कर पिताजी मॉस्को भाग गये। बाद में पूरा परिवार चला गया। मैं तागनरोग में अकेला कैसे पढ़ता था, क्या करता था मैं ही जानता हूं। इसके ऊपर मॉस्को से पत्र आते थे 'एण्टन, तुम वहां मजे उड़ा रहे हो, हम यहां भूखों मर रहे हैं।' आप खुद सोचिये इससे एक बच्चे की दिमागी हालत क्या होगी ? जब वहाँ से शिक्षा खत्म करके मॉस्को आया तो डाक्टरी की पढ़ाई शुरू की। पूरे घर का खर्चा और डाक्टरी की पढ़ाई का खर्चा। उस हालत में मैंने लिखना शुरू किया। पहले "घण्टा-घड़ी" नाम के अखबार में छोटी-मोटी चीजें लिखता था,

---

सुवोरिन को पत्र।[१]

फिर 'छिट-फुट' में लिखने लगा। उसे लीकन निकालता था —उससे काफी दोस्ती बाद में हो गयी। हर हफ्ते कुछ न कुछ हास्यरस का लिखना पड़ता था ...."

"आपकी पहली रचना कौन-सी थी ?" —मैंने प्रश्न किया।

"पहली ही ली जाये तो एक हास्यरस की कहानी थी 'सगझदार पड़ोसी को खत' यह "ततैया" नाम के पत्र में छपी; लेकिन कायदे से मेरी पहली रचना एक नाटक था "प्लातोनोव"—यह मैंने "मेली थियेटर" में खुद जाकर दिया। थोड़े दिन बाद यह मेरे पास डाक से लौट आया।" अपनी बात को उन्होंने पुनः जारी रखा—"लीकन' मुझे एक लाइन के सात या आठ कॉपेक देता था बाद में तो काफी मिलने लगे लेकिन मुझे हर समय यही लगता रहता था तमाम लिखने वाले रूसी लोगों में मैं ही सबसे अधिक उथला और विचारहीन हूँ। कवियों की भाषा में कहूँ तो मैं सरस्वती को प्यार जरूर करता हूँ लेकिन आदर नहीं कर सकता। मैं उसके प्रति जरा भी वफादार नहीं रहा और बेचारी को ऐसी ऐसी जगह ले गया जहाँ उसका कोई काम नहीं था। वही 'सिर धुन गिरा लागि पछताना वाला' मामला रहा............।"[१]

हालाँकि हमलोगों को उनकी बातों में रस आ रहा था, और विशेष-रूप से जब बातचीत ने एक ऐसी करवट ले ली थी कि वे अपने जीवन की पर्त पर पर्त खोलते चले जा रहे थे,लेकिन जब वे अपने लिखने के विषय में ही बोलने लगे तो फिर मुझसे कुछ और अधिक पूछे बिना नहीं रहा गया। एक दम पूछा —"तो क्या आप कभी भी अपने लिखने से सन्तुष्ट नहीं रहे ?"

चेखव चुप हो गये, जैसे कुछ सोच रहे हों, फिर आँख बन्द करके सोचते हुए बोले —"बड़ा मुश्किल प्रश्न है। पता नहीं आप सन्तोष का

ब्लादीमीर कोरोलैंको को पत्र।[१]

क्या अर्थ लेते है, लेकिन यह सच है कि मुझे अपने लिखने मे हमेशा शिकायत रही। चूकि मुझे पैसे के लिये लिखना पड़ता था इसलिये कभी भी मुझे अपना लिखा अच्छा नही लगा। मेरा तो विश्वास है कि जो कुछ मे लिखना चाहता था या जिस उत्साह से मै लिख सकता था, उस सबके मुकाबले मे आजतक जो कुछ भी मैने लिखा है, सब बेकार है। मेरे दिमाग मे ऐसे लोगो की पूरी फौज भरी है जो दिन रात अपनी मुक्ति के लिये प्रार्थना करते रहते है कि मै एक शब्द कहूं और वे निकल पड़े। मुझे बडा दुख होता है जब मै देखता हूं कि आजतक मैने जिन विषयो पर लिखा है वे सब कूडा है, जबकि अच्छे से अच्छे विषय मेरे दिमाग के कबाड़खाने मे पड़े सड रहे है।[१] काश, कि मुझे चालीस साल का समय और मिल जाता तो खूब पढता और मेहनत से लिखना सीखता, तब मै इन लेखकों की जमात मे ऐसी तोप चलाता कि सातो आसमान हिल जाते। अब क्या है, जैसे और बाने है एक मै भी हू! मैने अभीतक जो कुछ भी लिखा है पाच-दस साल मे लोग भूल जाएंगे, लेकिन सतोष मुझे इस मायने मे है कि जो रास्ता मैने खोल दिया है वह जीवित रहेगा—यही मेरी लेखक की दृष्टि से सबसे बड़ी सफलता है।"[२] फिर जरा व्यथापूर्ण हंसी हंसकर बोले—"इस सिलसिले मे मुझे दोदेत का एक उद्धरण याद आता है जो मैने नोट बुक मे लिखा था। एक चिड़िया से किसी ने पूछा—'तुम्हारे गीत इतने छोटे क्यों है? तुम्हारी सांस थोडी है इसलिये?'... 'नही, इसका कारण यह है कि मेरे पास बहुत से गीत है और मै उन सभी को गाना चाहती हूं।' सो भाई, चाहने से ही तो सब कुछ नही होता है न।"

"अगर समय का ही सवाल है तो"—निरंजन ने पूछा—"आप केवल लिखने में भी तो समय लगा सकते थे? सुनते है कि डाक्टरी भी आपके लेखन के साथ चलती रही।"

---

[१] सुवोरिन को पत्र। [२] लैज़ारेव ग्रुजिन्स्की को पत्र।

"हाँ, यह लेखन और डाक्टरी का मेरे जीवन में बड़ा द्वन्द्व रहा है।" उन्होंने उत्तर दिया –"यह ठीक है कि लिख लिख कर ही मैंने डाक्टरी पास की, तब भी मेरा काफी समय तक दृढ़ विश्वास था कि डाक्टरी मेरी वैध पत्नी है, और साहित्य मेरी प्रेयसी–जब मैं एक से ऊब जाता हूँ तो दूसरी के साथ रात गुज़ारता हूं। इससे एक तो एकरसता नहीं आने पाती थी, दूसरे मेरी इस ढुलमुल रुचि या चरित्रहीनता की वजह से किसी को भी नुकसान नहीं होता था। इसके अलावा डाक्टरी से चाहे मैं रुपया न कमा पाया होऊं पर शांति इसने मुझे बहुत दी है। अपनी बीमारी की वजह या किन्हीं और कारणों से जब मैंने अपने आप को पराजित और दुखी पाया तो मैं डाक्टरी में लग गया, दो तीन बार जब उपन्यास लिखने की कोशिशों में असफल हो गया तो फिर जोर से डाक्टरी शुरू की। मेरा नाटक 'समुद्री चिड़ियां' जब पहली बार बुरी तरह स्टेज पर असफल हो गया तो मैंने मिलीखोवों में सिर्फ डाक्टरी ही की। हजारों लोगों को हैजे से बचाया। मेरे प्रदेश में ही हैजे से सबसे कम लोग मरे थे। इसके अलावा इसमें कैसे-कैसे चरित्रों से आपका परिचय होता है कि तबियत खुश हो जाये। यों रहने को तो मुझे बागबानी का इतना शौक रहा कि मैंने शायद उस समय किसी को लिखा भी था कि अगर मेरा स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं माली बन गया होता। मिलीखोवो मेरी पहली जायदाद थी जहां बागबानी मैंने खूब की, फिर याल्टा में मौका मिला। टालस्टाय ने, सुनते हैं गोर्की से एक बार कहा भी था कि अगर मैंने डाक्टरी न पढ़ी होती या अगर यह डाक्टरी मेरे रास्ते में बाधक न होती तो मैं बहुत अच्छा लेखक होता, लेकिन उन्होंने शायद तबतक 'काला-संन्यासी' कहानी नहीं पढ़ी थी। खैर जो भी हो, डाक्टरी ही एक ऐसी चीज है जिससे मैं दैनिक जीवन की बहुत साधारण-सी गलतियों से बच गया हूं। इससे आपकी निरीक्षण शक्ति बढ़ती है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमेशा आपको वास्तविकता के अधिक निकट रखता है। बहुत मोटा उदाहरण लो–सच है कि

आप एक जहर खाने वाले आदमी की स्थिति को ज्यों का त्यों नहीं उतार सकते—लेकिन उस स्थिति का अधिक से अधिक वैज्ञानिक सत्य तो आप दे ही सकते हैं। ऐसी स्थिति में यह जानते हुए भी कि यह सब स्टेज की चीज़ है, श्रोता या दर्शक यह तो मानेगा कि वह किसी समझदार लेखक से उलझा है। मैं उन लेखकों में नहीं हूं जो विज्ञान की तरफ से पीठ फेर कर, हर कहीं अपनी सूक्ष्म-दृष्टि पर विश्वास करते हैं। ऐसे ही एक बार एक सज्जन कहीं जोला का 'डा० पास्कल' पढ़ आए और बड़े शान से डाक्टरी के बारे में मुझसे बातें करने लगे। मुझे आ गया गुस्सा, मैंने उन्हें झाड़ दिया 'तुम्हारा जोला कुछ नहीं जानता, वह कमरे में बैठकर सब कुछ गढ़ता है। उसे जरा बाहर निकल कर देखना चाहिये हमारे यहां के डाक्टर कैसे काम करते हैं – वे किसानों के लिये क्या कर रहे हैं?'१ वे थोड़ी देर चुप हो गये।

"तब तो आपने डाक्टरी से भी काफी कमाया होगा" —मैंने सवाल किया।

"नहीं, डाक्टरी से कमा ही नहीं पाया।" जैसे बड़े उत्साह से उन्होंने कहा—"लोग एक-एक दो-दो रूबल मुझे घर पर बुलाने के देते थे। उनकी हालत ऐसी खराब थी कि दया आती थी। मिलीखोवो में तो मैंने सुबह के तीन घंटे मुफ्त दवा के लिये रख दिये थे। आस-पास के पड़ोसी मुझे देवता की तरह पूजते थे। डाक्टरी से जो भी मैंने थोड़ा बहुत कमाया, सब एक स्कूल में लगा दिया लेकिन जीविका के लिये तो मैंने लिखने पर ही दिन बिताये।"

"इसका मतलब है, रूस में लिखने से काफी मिल जाता है, क्योंकि आपके समकालीन फ्रांसीसी और अंग्रेजी लेखक तो भूखों मरते थे। उन्होंने अपनी रचनाएं तो कौड़ियों पर बेचीं। हिन्दुस्तान की तो बात ही छोड़

अलैकजेन्द्र कुप्रिन का संस्मरण।[१]

दीजिये......।" यह प्रश्न करते समय मुझे हिन्दी के लेखकों का ध्यान आया ।

"हाँ, लिखने से मैंने कमाया तो काफी, लेकिन कभी भी ऐसी स्थिति नहीं रही कि अपने को आर्थिक रूप से संतुष्ट पाता । इसकी बहुत बड़ी वजह यह थी कि एक तो मेरा परिवार बहुत बड़ा था—जिसमें अपने भाइयों की आवारगी और शराबखोरी का खर्चा भी मैं ही देता था, दूसरे हमेशा बीमार रहने के कारण इलाजों और इधर-उधर भागने में चला जाता था । एक जगह जम कर रह ही नहीं पाया । कभी मॉस्को की ठण्ड बर्दाश्त नहीं हुई, तो मिलीखोवो भाग रहे हैं, कभी याल्टा, कभी मॉस्को के किसी गाँव में । लेकिन इतना होते हुए भी मैंने मिलीखोवो में काफी बड़ी जायदाद खरीदी थी, मॉस्को में अच्छे से अच्छे फ्लैट में रहा, याल्टा में जगह खरीदी । पहले जब मैं लीकन के 'छिट-फुट' में लिखता था तो वह मुझे सात कॉपेक एक लाइन के देता था—मगर उसके साथ बन्धन यह था कि वह हमेशा ही १००—१२० लाइनों की कहानी लेता था, खैर फिर जब सुवोरिन के 'नवयुग' में लिखना शुरू किया तब शुरू में उसने बारह कॉपेक दिये,बाद में तो चालीस तक दिये । तो यों लिखने से मैं खूब घूमा भी । बाद में सुवोरिन ने जब मेरी रचनाएं पुस्तकाकार छापनी शुरू कीं तो काफी पैसे दिये । मार्क्स से तो मेरा कन्ट्रैक्ट अब हुआ है कि वह मेरी सारी रचनाओं के पचहत्तर हजार रूबल देगा, वर्ना मेरे साहित्य-जीवन में सुवोरिन ने बहुत सहायता की है । अब गोर्की इत्यादि पिचहत्तर हज़ार में भी यही कहते हैं कि मैंने अपनी रचनाएं फेंक दीं और वे लोग तो इस कंट्रैक्ट को तुड़वाने के लिये एक पत्र तक मेरी ओर से लिख लाये थे, सभी लोग उसपर हस्ताक्षर करके भेजने वाले थे कि यह कंट्रैक्ट तोड़ दिया जाय—और वे लोग खुद मेरे लिये बीस हज़ार रूबल साल का प्रबन्ध करेंगे, वे कहते थे कि मार्क्स को जोला के प्रकाशक से कुछ सबक लेना चाहिये । मुसीबत के समय उसके प्रकाशक ने न केवल पहला एग्री-

मेण्ट रद्द कर दिया बल्कि उसने खुद पहले से अच्छा एक नया एग्रीमेंण्ट कर लिया। लेकिन भाई, मैंने तो उन सबको रोक दिया। अब आप ही सोचिये, सौदा-सौदा है, अब उसके पलटने का क्या अर्थ है.....?"

"यह सज्जन सुवोरिन कौन है, इनका आपने कई बार जिक्र किया है और मार्क्स से क्या आपका मतलब कार्ल-मार्क्स से है ?" चैखव तो अपने प्रवाह में लोगों के नाम लेते चले जाते थे लेकिन चूंकि हम नये थे, अतः हमें सब कुछ बड़ा नया सा लगता था, अतः मैंने पूछ ही लिया।

"अलैक्सी सुवोरिज ?" चैखव हमारी मजबूरी को समझकर थोड़ा मुस्कुराये —"यह 'नवयुग' नामक पत्र के मालिक और प्रकाशक हैं। लीकन ने शुरू-शुरू में जहां मेरा भला किया वहां स्वार्थवश सबसे बड़ा अहित भी किया। उस कम्बख्त ने महीनों मुझे अँधेरे में रखा। मैं मॉस्को में बैठा उसके अखबार में लिखता, पैसे मिलते और काम चलाता। यह लिखना क्या रंग ला रहा है इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। पहली बार जब मैं मॉस्को से पीटर्सबर्ग गया तो अपने महत्व को देखकर दंग रह गया। पता लगा कि मैं काफी बड़ा कहानीकार माना जाने लगा हूं। कई मीटिंगों में मेरा काफी आदर-सत्कार हुआ। तब मुझे लीकन की स्वार्थपरता पर बड़ा ही क्रोध आया कि मैं किसी और अखबार में न लिखूं सिर्फ इसीलिये इसने मुझे अन्धकार में रखा। वहीं प्रसिद्ध उपन्यासकार ग्रिगोरोविच के प्रोत्साहन और बढ़ावे से मेरा परिचय इन अलैक्सी सुवोरिन से हुआ। ये स्वयं भी बहुत ही अच्छे कहानीकार थे। इससे पहले मैंने 'पीटर्सबर्ग गजट' में भी कुछ कहानियां दी थीं। 'लीकन' इससे कुछ नाराज हो गया था,फिर भी पूरी तरह हमारी बिगाड़ आजतक नहीं हुई। इसके अलावा ग्रिगोरोविच ने मुझे इतना चढ़ा दिया कि वे खुद को मेरा 'आविष्कर्ता' घोषित करने लगे। जो भी हो इतना तो सच है जब भी मुझे जितने भी धन की आवश्यकता पड़ी, सुवोरिन ने निस्संकोच दिया—लिखने के अलावा रचनाओं के एडवान्स,

पुस्तकों की रॉयल्टी के एडवान्स काफी लिये--उन दिनों तो शायद ही कोई साल ऐसा होगा जब मैंने सुवोरिन से रुपये न लिये हों--जायदाद खरीदनी है, सुवोरिन को खत, कहीं जाना है सुवोरिन से माँग। और मुझे स्वीकार करना चाहिये सुवोरिन कभी नहीं झिझके। हमलोगों में लेखक-प्रकाशक के अलावा घरेलू सम्बन्ध भी काफी घनिष्ठ था। हमलोग शुरू मे ही एक दूसरे के यहां आते-जाते रहते थे। एक बार मैं उनके लड़के के साथ तमाम कोहकाफ़, काला-समुद्र और दक्षिणी रूस घूमकर आया--दूसरी बार खुद उनके साथ पैरिस गया--विदेश जाने का भी प्रोग्राम कई बार बना लेकिन मैं ही नहीं जा पाया। तो इस प्रकार सुवोरिन मेरे सबसे अच्छे मित्रों में से है। कोई घरेलू समस्या ऐसी नहीं है जिस पर उसने सलाह नहीं दी हो या हमलोगों ने विचार-विनिमय न किया हो। उसको पत्र लिखते समय मैं बिलकुल भूल जाता था कि मैं एक प्रकाशक को पत्र लिख रहा हूँ शायद जिन्दगी के सबसे अच्छे पत्र मैंने उसे ही लिखे हैं। बाद में जब रूस के सबसे बड़े प्रकाशक मार्क्स से टाल्सटाय ने मेरा परिचय कराया और हमारा सौदा हुआ तो, यह भूल कर कि मेरा सौदा उसके प्रतिद्वन्द्वी प्रकाशक से हो रहा है उसने मुझे ऐसा कर डालने की सलाह दी।" --फिर वे हँसकर बोले--"जब मेरे पूरे साहित्य का सौदा मार्क्स से पिचहत्तर हजार में हो रहा था तो मैंने अपनी एक महिला मित्र लिडिया एविलोव को मजाक में लिखा था कि अब मैं 'मार्क्सवादी' हो गया हूँ।"

"हाँ, सुवोरिन जैसा मित्र और प्रकाशक का मेल हिन्दुस्तान में मिलना तो असम्भव समझिये। यहाँ तो चाहे बचपन के दो मित्रों में से आगे चलकर एक लेखक बन जाये दूसरा प्रकाशक, तब भी प्रकाशक अपनी करनी से बाज नहीं आएगा।" --निरंजन ने उनकी बात का समर्थन करके कहा --"अभी एक नया उदाहरण है --दो व्यक्तियों में काफी मित्रता थी। इधर उधर विदेशी दूतावासों से पैसे मारकर एक बहुत बड़ा प्रकाशक बन बैठा, फिर उन्होंने अपने लेखक मित्र के साथ एक पत्रिका निकाल डाली जब

देखा कि पत्रिका काफी जम गयी है तो ऐसा उछाला कि बेचारे लेखक मित्र दूर जा गिरे.........!"

"और मज़ा यह कि ऐसा नहीं कि हमलोगों में मतभेद न हुआ हो।" सुवोरिन का ज़िक्र आते ही चैखव उत्साह में आ गये —"कैप्टेन ड्रीफ़ुस के केस में जोला को लेकर तो हमलोगों के सम्बन्ध इतने खिंच गये कि टूटने की नौबत आ गयी। हुआ यह कि १८९४ में फ्रेंच कैप्टेन अलबर्ट ड्रीफुस पर अपराध गढ़कर मुकदमा चलाया गया कि उसने कुछ मिलिटरी के गुप्त भेद जर्मनों को बेच दिये हैं। आजन्म कारावास देकर उसे 'शैतानी-द्वीप' में भेज दिया गया। लेकिन दिसम्बर १८९७ में मेजर ईस्थराज़ी पर कर्नल पिक्कार्ट ने ड्रीफुस के सिलसिले में झूठे कागजात बनाने के अपराध में मुकदमा चला दिया और इसमें मेजर ईस्थराज़ी छूट गया। इसीको लेकर ड्रीफ़ुस के पक्ष में जोला ने फ्रांसीसी प्रजातन्त्र के प्रधान को अपने प्रसिद्ध पत्र लिखे। मैं भी ड्रीफ़ुस को निरपराध मानता था। उन्हीं पत्रों के अपराध में जोला पर मुकदमा चला और एक साल की सजा हो गयी। सुवोरिन का "नवयुग" अधिकारियों के पक्ष में था। उन दिनों उसकी एक महिला संवाददाता ने मुझसे पूछा —'क्या आप अब भी समझते हैं कि जोला सही था', तब मैंने उसे जवाब दिया था कि 'क्या सचमुच आपकी मेरे बारे में इतनी बुरी राय है कि आपको मुझसे ही यह पूछनेकी जरूरत पड़ी कि मैं जोला के पक्ष में हूँ? वे तमाम अफसर जिन्होंने उस-पर मुकदमा चलाया—वे सारे गवाह उसके चरणों की धूल के बराबर भी तो नहीं हैं। मैं रोज अखबार पढ़ता हूँ और मुझे उसमें जोला की जरा भी गलती नहीं लगती —पता नहीं लोग और क्या प्रमाण चाहते हैं।" फिर जैसे गर्व से वे बोले—"उस समय तो मैंने अपने भाई अलैक्जैन्ड्र को लिखा था—तुम चाहे जो कुछ भी सोचो, यह "नवयुग" जरा भी अच्छा प्रभाव नहीं पैदा कर रहा। पैरिस की इतनी झूठी और गलत खबरें यह लोग देते हैं कि बिना घृणा अनुभव किये आप पढ़ नहीं सकते। यह

अखबार है ? चूं-चूं का मुरब्बा बना रखा है ! भूखे भेड़ियों का जैसे झुण्ड हो ! इनके स्टाफ में कोई भी तो ऐसा आदमी नहीं है जो उच्चादर्श नामकी चीज जानता हो । जोला कैसा ही हो लेकिन जब उसपर मुकदमा चल रहा है तब उसके खिलाफ लिखना साहित्यिक अपराध है । मैं सुवोरिन को कुछ नहीं लिखना चाहता, न यह चाहता हूं कि वह मुझे लिखे ।" तो सुवोरिन की मित्रता ने जहां और फायदे किये वहां सबसे बड़ा नुकसान मेरे साथ यह किया कि मैं अधिकांश समय प्रतिक्रियावादी विचारधारा से बँधा रहा । उदार या प्रगतिशील विचारों की ओर मेरा झुकाव था अवश्य, लेकिन उसको उतने वेग से ग्रहण न करने का मुख्य कारण सुवोरिन और उसका पत्र रहा ।" बोलते-बोलते चैखव काफी थक गये थे बीच बीच में वे खाँसते भी जाते थे । अब हट कर सोफे पर ही अच्छी तरह लेट गये, मुह हमारी ओर ही था ।

शायद उनकी तकलीफ को न समझ कर हमलोग उन्हें कष्ट पहुँचा रहे हों —यह सोचकर मैंने पूछा —"बात-चीत करने में आपको ज्यादा तकलीफ तो नहीं हो रही । एतराज न हो तो हमलोग फिर कभी मिल लेंगे । आपकी तबियत खराब है ।"

"बैठिये-बैठिये ।" वे बोले —"मैंने बताया न, कि इस रोग से तो हमेशा ही मेरी लड़ाई रही है—और मैंने कभी स्वीकार करने ही नहीं दिया कि मुझे कोई गंभीर बीमारी है—आबहवा बदलने के अलावा कई बार क्लिनिक में भी रहा लेकिन हार तो सीखी ही नहीं है । यही तो संघर्ष की शक्ति थी जो मेरे स्वभाव की तेजी बन गयी । अपने घर में मैं काफी अक्खड़ स्वभाव का समझा जाता रहा हूँ—सारे घर वाले मेरा रौब मानते थे । बस, 'मेरी' बहन से मेरी खूब पटती है—यह टीचर है । इसे मैंने अपना सबसे अच्छा मित्र माना है............."

"चैखव साहब, अगर आप बुरा न मानेंगे तो मैं पूछना चाहूंगा कि स्त्री के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?" मैंने पूछ लिया ।

"क्यों इसमें बुरा मानने की क्या बात है ? शायद 'मेरी' के जिक्र से आपको ऐसा ध्यान हो आया है।" उन्होंने बताया—"जब से टाल्सटाय के विचारों से मैंने अपना पीछा छुड़ाया है, तब से स्त्री के सम्बन्ध में मैं बढ़ा-घटा कर नहीं सोचता। पहले टाल्सटाय के प्रभाव में आकर मैं जरूर स्त्री को पाप की जड़ मानता था और कहता था कि हर नैतिक कार्य में मनुष्य का 'काम' बाधक है। लेकिन अब मैं कुछ दूसरी तरह सोचता हूँ। मैंने १८८३ में एक प्रबन्ध लिखकर सिद्ध किया था कि प्रकृति की तरफ से स्त्री और पुरुष में ज़रा भी भेद नहीं है। जो कुछ भी नारी की कमजोरी है वह सब इस वजह से कि स्त्री को माता बनना पड़ता है, गर्भ धारण करना पड़ता है। उसमें मैंने यह भी सिद्ध किया था कि मादा के ऊपर नर के इस प्रभुत्वको प्रकृति इस रूपमें समाप्त करेगी कि आगे जाकर ऐसे प्राणियों का विकास हो जिनमें मादा गर्भ ही धारण न करे। खैर, जो भी हो, मैं तो इस बात का पक्षपाती हूं कि स्त्री को समाज में उचित सम्मान मिले। आपको किसी ने ऐसा अधिकार नहीं दिया कि आप उसके साथ या उसकी उपस्थिति में अशोभन भाषा या अशोभन व्यवहार करें आपको उसका उचित आदर करना होगा—चाहे जैसी स्त्री हो, उसके सामने बिना पाजामा पहने आना हद दर्जे की नीचता है।"१ फिर अपने प्रवाह को बदलकर चैखव ने कहा—"स्त्री के प्रति यही यथार्थवादी दृष्टिकोण है कि मैंने इतनी सफल नायिकाओं की सृष्टि की है। मेरा तो कहना है कि साहित्य में स्त्री का वर्णन इतना सजीव और जानदार हो कि उसे पढ़ते ही आप ऐसा अनुभव करने लगें जैसे आपके जूतों पर पॉलिश नहीं है—जैसे आपकी टाई की गाँठ ठीक नहीं बंधी है—बिलकुल वैसे ही जैसे आप वास्तव में किसी स्त्री को देखकर अनुभव करते हैं। यही कारण है कि तुर्गनेव मेरा सबसे प्रिय

---

२ जनवरी १८८९ को अलैक्जैन्ड्र को पत्र।[1]

लेखक होते हुए भी उससे मुझे शिकायत है। उसकी स्त्रियां नकली हैं—वैसी स्त्रियाँ कहीं होती ही नहीं। गोर्की के साथ भी यही बात है। मैंने एक बार उसके विषय में लिडिया एविलोव को लिखा था—देखने में गोर्की आवारा-सा लगता है लेकिन वास्तव में बड़ा सभ्य व्यक्ति है। मुझे बड़ी खुशी हुई उससे मिल कर। मैं उसका परिचय स्त्रियों से कराना चाहता हूं, लेकिन इससे वह भड़कता है।"१

"इसका मतलब यह हुआ कि आप चाहते हैं, लेखक जो कुछ भी लिखे खुद अनुभव करके लिखे। हत्या के विषय में लिखने से पहले वह हत्या करे और शराब के विषय में लिखे तो शराब पिए।" मैंने अपना तर्क रखा—"ऐसी हालत में ईमानदार लेखक के विषय ही या तो बहुत सीमित हो जायेंगे या फिर जो कुछ वह लिखेगा सब उसकी व्यक्तिगत डायरी बन कर रह जायेगा।"

"नहीं, आप दोनों स्थितियों को मिलाइये मत। गोर्की से मुझे दूसरी शिकायत यह भी है। किसी भी मनोविज्ञान या मनोवैज्ञानिक स्थितियों का वर्णन करना बड़ा अच्छा है, मैं तो कहूंगा अनिवार्य है लेकिन गोर्की अपने मनोविज्ञान का आविष्कार करता है..."२ मतलब, ऐसे मनोविज्ञान का वास्तविक अस्तित्व होता ही नहीं है, वह सिर्फ लेखक की उपज होती है। दूसरी तरफ हर बात में अपने को लादना—यानी आत्मपरक दृष्टिकोण और भी खतरनाक है, क्योंकि इस चक्कर में छोटे-मोटे लेखक की तो नैया ही डूब जाती है—वह इसीमें उलझ कर रह जाता है। सबसे बड़ी चीज तो यह है कि अपने प्रति ईमानदार रहो। जो कुछ देखा सुना है उसीका ठीक प्रयोग करो। अपने उपन्यास का नायक लेखक खुद बन बैठे, मैं इसके सख्त खिलाफ हूं—जरा अपने व्यक्तित्व

१८ मार्च १८९९ को एविलोव को पत्र।[1] मिरवायल को पत्र।[2]

को फैलाव और विस्तार दो, दो-एक घण्टे को अपने आप को भूल जाओ...।"१

"मैं यह पूछ रहा था कि अभी आपने जिनका नाम लिया, ये लिडिया एविलोव कौन थीं ?"—यह देखकर कि वे अपने विषय से हट रहे हैं, निरंजन पूछ बैठा ।

इस बार वे बड़े जोर से हँस पड़े—"लगता है मेरे जीवन में आप कोई रहस्य रहने नहीं देंगे, बातों ही बातों में सब कुछ पूछ डालेंगे ।" फिर जरा गंभीरता धारण करके जैसे वे किसी ऐसे विषय पर बात कर रहे हैं जिससे उनका कोई सम्बन्ध कभी नहीं रहा, चैखव ने कहना शुरू किया—"तो सुनिये, यह लिडियाएविलोव एक ऐसी विवाहित महिला थी जिसके प्रथम दर्शन ने ही मुझे चमत्कार में डाल दिया । यों तो नाटक के सिलसिले में रिहर्सलों में वैसे भी हजारों लड़कियों और महिलाओं के सम्पर्क में आने का मौका मुझे मिला है जो एक से एक खूबसूरत थीं,प्रसिद्ध थीं । अच्छे घरानों की स्त्रियाँ और अच्छी से अच्छी अभिनेत्रियाँ, मैं सभी के सम्पर्क में आया हूं । डाक्टरी में तो इसका और भी अवसर रहा है । घण्टों—कभी कभी तो मैंने रातों इन स्त्रियों के साथ हँसते-खेलते, शराब-गानों में बिताया है लेकिन यह लिडियाएविलोव ही एक ऐसी लड़की थी जिसने मेरे अस्तित्व और जीवन को झकझोर कर रख दिया । परिचय के बाद मेरे जीवन की सीधी-सादी गति में जो भी झटके, मोड़ और छलाँगें दिखाई देती हैं, वे सब इसी के कारण हैं । सबसे पहले मैंने इसे पीटर्सबर्ग में देखा । एक नाटक के सम्बन्ध में सुवोरिन मेरे पास मॉस्को में आये, फिर हम दोनों पीटर्सबर्ग गये । मेरा नाटक "आइवानोव" खेला जा रहा था । मैं उसकी रिहर्सलों के समय वहीं रहना चाहता था । 'पीटर्सबर्ग में मैं खुदकोव' जो 'पीटर्सबर्ग गजट' का सम्पादन करता

---

२५ अप्रैल १८९९ को टालसटाय के गोर्की सम्बन्धी विचारों से सूचित करते हुए गोर्की को पत्र ।[१]

था, के पास भी मिलने गया। हमलोग बैठे थे तभी यह आई। खुदकोव ने परिचय कराया। वह उसकी साली थी और एक अफसर से उसका विवाह हुआ था—उसका एक लड़का भी था। खैर, जब मेरा परिचय हुआ तो मैं विवश-सा उसकी ओर खिंच गया। बड़ी देर तक उसका हाथ अपने हाथ में लिये रहा और आश्चर्य से उसे घूरता रहा। बाद में जब इसने विवाहित होने की बात बताई, तो मैं केवल भौंचक उसकी आँखों में ही देखता रहा। पता नहीं, उस समय मुझे क्या हो गया था? बाद में लिडिया ने जो वर्णन अपनी हालत का दिया वह तो जैसे मेरी हालत से बिलकुल ही मिल गया। उसने कहा था, कभी-कभी किसी घटना का वास्तविक अर्थ बताना कितना कठिन होता है? और सच बात तो यह है कि उस दिन ऐसा कुछ नहीं घटित हुआ। हम दोनों एक दूसरे की आँखों में देखते रहे। लेकिन उन्हीं दृष्टियों में हमने कितना कुछ विनिमय कर लिया था! लिडिया को तो ऐसा लगा जैसे उसके भीतर कुछ विस्फोट हो उठा है—जैसे कोई बम फूट गया है—प्रकाश, आह्लाद और विजय का बम! वह जान गयी थी कि मेरी भी यही स्थिति है।[१] यह मेरी उसकी पहली मुलाकात थी और आखिरी मुलाकात तब हुई जब मेरा "समुद्री चिड़ियाँ" "मॉस्को आर्ट थियेटर" द्वारा व्यक्तिगत रूप से खेला जा रहा था और मैंने उसे बुला भिजवाया था लेकिन वह आई नहीं। इस प्रकार "आइवानोव" और "समुद्री चिड़ियाँ" के बीच का समय मेरे और लिडिया के विचित्र प्रेम का समय रहा है। विचित्र इस अर्थ में कि हमलोग एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे! साथ ही कभी भी अधिक समय मिलकर मेल से नहीं रहे। कभी वह नाराज रही और कभी मैं। कभी मैंने उससे अपने सारे सम्बन्ध समाप्त करने की घोषणा की और कभी जब वह चुप हो गयी तो दोनों ने

---

१ 'मेरे जीवन में चेखव' में लिडिया का वर्णन।

एक दूसरे के लिये व्याकुलतापूर्ण पत्र लिखे। वह मिलिखोवो दो एक बार आई और मैं तो जब पीटर्सवर्ग आता था, उससे मिले बिना रह ही नहीं पाता था। उसका पति बाहर रहता था, अतः उसकी बहन द्वारा मुझे फौरन ही खबर मिल जाती। उन दिनों मैं टाल्सटाय के संयम, आत्मनिग्रहवादी दर्शन के प्रभाव में था, अतः यह प्रेम एक बड़ा विचित्र द्वन्द्व मेरे मन में बन गया। मैं इस प्रेम को छुपाता था, इससे बचता और भागता था—अपने आप से लड़ता था लेकिन विवश था। कभी कभी तो मैं इसीलिये कई कईबार पीटर्सबर्ग आकर भी उससे नहीं मिलता था। उन्हीं दिनों मेरे घर में बड़ा ऊधम अलैक्जैन्द्र भाई साहब को लेकर उठा हुआ था। उनकी पहली पत्नी को जिसका एक बच्चा भी था, तलाक नहीं मिल रहा था, चारों ओर मेरी बदनामी फैल रही थी। उन दिनों मैं मानसिक रूपसे बहुत ही परेशान था.........''

''शायद उन्हीं दिनों की मानसिक और वास्तविक स्थिति के आधार पर आपने 'द्वन्द्व' नामकी लम्बी कहानी लिखी थी।'' मैंने बीच में टोक कर पूछा, फिर जरा अपनी बात को साफ किया —''उसमें भी तो अन्नाकैरेनिना की तरह एक विवाहित स्त्री नाद्येज्दा फ्योदोरोव्ना लायव्स्की के साथ सुदूर काकेशस प्रान्त में जाकर रहने लगती है—और वहाँ का जो कुछ वर्णन आपने दिया है—उस सब पर टालसटायन फिलॉसफी का प्रभाव है, या ऐसा लगता है, उस प्रभाव से छुटकारा पाने का आप प्रयत्न कर रहे हैं ?''

''मैंने कहा न कि हर चीज को मेरे जीवन से मत नापो। यह ठीक है कि उन दिनों मुझे अन्नाकैरेनिना बहुत प्रिय थी, और 'द्वन्द्व' भी उन्ही दिनों की रचना है और यह भी ठीक है कि मैंने जब वह रचना लिखी थी तब मेरा विश्वास टालसटाय के आत्मनिग्रह और सत्याग्रह से उठ चुका था; लेकिन जैसा मैंने अभी बताया, अपने आपको अपनी रचनाओं का नायक बनाकर जीवनी लिखना मुझे नापसन्द है। आपने 'द्वन्द्व' में से छाँट लिया, इसी तरह

एक बार मैंने कहानी लिखी, उसका नाम रखा "प्रेम के बारे में", पता नहीं कैसे लिडिया ने मेरे एक पत्र से अंदाजा लगा लिया कि मैं उसे 'रूसी विचार' नामक पत्र में प्रकाशित इस कहानी को पढ़वाना चाहता हूँ। कहानी उसने पढ़ी और उससे नतीजा यह निकाला कि मैं चाहता हूँ हमारा और उसका सम्बन्ध समाप्त हो जाये। उसका इस भावना का पत्र जब मुझे मिला तो मैंने उसे सफ़ाई दी जिसकी एक पंक्ति का (स्वस्थ और प्रसन्न रहो) अर्थ लगाया कि मैं उससे सम्बन्ध तोड़ना चाहता हूं तभी तो ऐसी बात लिख रहा हूँ। मैंने उससे माफी माँगी तब कहीं गलत-फहमी दूर हुई। वह अच्छी लेखिका भी थी और अपनी किताबों पर ऐसी ही विचित्र-विचित्र बातें लिख देती थी। एक बार तो उसने लिखा--" जैसे एविलोव की बातें करते-करते चैखव उसमें डूब गये--"अपनी पुस्तक पर उसने लिख कर दिया--'घमण्डियों के उस्ताद को, उसके शिष्य की ओर से।' तब मुश्किल से उसे समझाया था कि मुझे 'घमण्डियों का उस्ताद' क्यों कहती हो ऐसे तो सिर्फ तुर्क होते हैं। तुम्हारा उस्ताद तो बड़ा ही शान्त है।" कभी-कभी उसके पति और तीन बच्चों के कारण हमारे सम्बन्धों में गलतफहमी आ जाती। एक बार तो उसने बड़ा विचित्र मजाक किया। उसने जौहरी से घड़ी की जंजीर में लटकने वाला ऐसा झुमका सा बनवाया, जिसकी शक्ल बिल्कुल किताब जैसी थी। उसके एक तरफ उसने खुदवाया--"चैखव की कहानियां" और दूसरी तरफ खुदवाया "पृष्ठ २६७ लाइन छः-सात" और यह उसने 'रूसीविचार' के दफ्तर में 'गोल्तसेव' के द्वारा मुझतक पहुँचवाने के लिये भेज दिया--आप जानते हैं उसमें किस लाइन की ओर संकेत था ?" उन्होंने प्रश्नकिया और स्वयं ही मुस्करा कर बोले "वह संकेत था मेरी "पड़ोसी" कहानी की एक लाइन का "यदि तुम्हें कभी भी मेरे प्राणों की आवश्यकता पड़े तो आओ और ले लो।" इस लाइन के दुहराने के साथ वे चुप हो गये। कुछ देर चुप्पी रही, जैसे वे भीग गये हों --"मेरे नाटक 'समुद्री चिड़िया'

के तीसरे दृश्य में 'नीना' भी इसी तरह अपना सन्देश भेजतीहै। इतना गहरा प्रेम था लेकिन............"

शायद इस समय वे बहुत अधिक विभोर हो गये थे इसलिये थोड़ी देर की चुप्पी के बाद मैंने बात को दूसरा मोड़ दिया—"कुछलोगों का विचार यह है कि आप जो उन दिनों जमकर नही रह पाये, निरन्तर कहीं न कही भागने की प्रवृत्ति आपमें रही—वह आपकी अपने आपसे भागने की प्रतीक थी।१ इसी प्रकार आपके 'द्वन्द्व' में लायव्स्की भी हर परिस्थिति मे भागता है। खैर 'द्वन्द्व' तो आपने १८९१ में लिखा था इसमे पहले यानी लिडिया के परिचय के एक साल बाद अर्थात १८९० मे आपने शाखालिन द्वीप की जो यात्रा की थी, उसके मूल में भी लोग यही आत्म-द्वन्द्व और जो कुछ आप प्राप्त नहीं कर सकते थे, साथ ही जिसके बिना रह भी नहीं सकते थे अतएव उसकी उपस्थिति मे कतराने की भावना बताते है; यह कहां तक ठीक है ?"

"शाखालिन और लिडिया......" इस बार उन्होंने गर्दन घुमा कर तीखी दृष्टि से मेरी ओर देखा,फिर जैसे आगे बोलने के लिये शब्द खोजते रहे, एकदम बोले—"इन दोनों का सम्बन्ध जोड़ना गलत है।" फिर थोड़ी देर आवेश से वे चुप रहे। बस उनके होंठ कॉपते रहे, जैसे उन्हें ध्यान आ गया हो कि अभी वे इस बात को स्वयं अपने मुह मे स्वीकार कर चुके हे कि लिडिया ने कैसे उनके जीवन में एक आंदोलन ला खड़ा किया था। फिर जैसे इस बात की सत्यता स्वीकार करके ही उसे झुठलाने को अपने हर शब्द पर जोर देकर बोले—"बिलकुल गलत है!" तभी शायद फिर उन्हें ध्यान आ गया कि उनकी यह अस्वाभाविक उत्तेजना उनके शब्दों के विरुद्ध प्रमाण दे रही है, अतः एक दम सुस्थिर स्वर में उन्होंने बताना शुरू किया—"बात असल में यह थी कि उस समय तक मै साहित्यिक रूप

---

३० अगस्त को लिडिया को पत्र।[१]

से काफी प्रसिद्धि पा चुका था। दो साल पहले मुझे विज्ञान-परिषद की ओर से "पुश्किन पुरस्कार" भी मिल चुका था। मेरे मन को हमेशा यह चीज खलती थी कि डाक्टरी को मैं अपनी वैधपत्नी मानता हूँ लेकिन उसे कुछ भी दे नहीं सका। इसीलिये मैं शाखालिन गया—हालाँकि जाते समय भी यह चीज मेरे सामने स्पष्ट थी कि मेरी यह यात्रा विज्ञान या कला को कोई अनोखी देन नहीं दे सकेगी,—क्योंकि मुझे उतना ज्ञान नहीं था, समय नहीं था और शायद महत्वाकांक्षा भी नहीं थी। बस मेरी इच्छा भी यही थी कि इस यात्रा के द्वारा सौ दो सौ पृष्ठ लिख कर डाक्टरी के उस ऋण को मैं उतार दूं जिसकी ओर मेरा रवैया सख्त हरामखोरी का रहा है।[१] और यह भी मुझे विश्वास था कि शायद उस यात्रा का कोई भी लाभ न उठा सकूं, फिर भी इस विश्वास से मेरी वहां जाने की इच्छा में जरा भी अन्तर नहीं पड़ा।"

"यह तो आप बड़ी दो विरोधी सी बातें कर रहे हैं—वहाँ जाना भी चाहते थे, साथ ही यह भी जानते थे कि वहाँ जाने का कोई लाभ न होगा।" निरंजन ने टोक दिया—"रही घूमने की बात, सो जिसका स्वास्थ्य हमेशा ही खराब रहता हो, वह उस द्वीप में जाने की बात सोचे जहाँ सिर्फ आजन्म कारावास पाये कैदी रहते हों या जहाँ बर्फ के सिवा कुछ न हो—यह बात भी कुछ समझ में नहीं आती वह जगह—पास भी तो नहीं है, दुनिया के दूसरे सिरे पर है।"

इस बात से चैखव फिर जैसे पशोपेश में पड़ गये, मैंने हाथ के इशारे से निरंजन को इस सम्बन्ध में आगे कुछ पूछने से रोक दिया।

एक हँसी के बाद चैखव कह रहे थे—"जहाँ कैदी रह रहे हों वहाँ घूमने न जाने की बात आपने खूब कही! इच्छा भी तो कोई चीज है यह जरूरी थोड़े ही है वहाँ सजायाफ्ता ही जाय। आप ही बताइये,

---

९ मार्च १८९० को सुवोरिन को पत्र।[१]

टाल्सटाय के 'पुनर्जीवन'० में नैख्ल्युदोव नर्तकी के साथ साइबेरिया जाता है उसे क्या किसी ने सजा दी थी ? वह भी तो अपनी इच्छा से गया था न। तो खैर, मेरी इस यात्रा के सभी लोग विरोधी थे, सुवोरिन ने तो यह लिख दिया था कि वहाँ जाकर क्या करोगे, शाखालिन में कोई ऐसी चीज ही नहीं है जो जरा भी किसी की रुचि की हो। लेकिन मेरा कहना यह था, अब भी है, कि हर लेखक को शाखालिन अवश्य ही जाना चाहिये। अगर मैं भावुक होता जो कि मैं जरा भी नहीं हूँ, तो यहाँ तक कह सकता था कि शाखालिन जैसी जगहों की तो हमें उसी तरह तीर्थ यात्रा करनी चाहिये, जैसे तुर्क लोग मक्का की यात्रा करते हैं या मिलिट्री के आदमी सैवस्टोपोल की। और ऐसी जगह में केवल उसी देश को कोई रुचि नहीं हो सकती, जो शाखालिन में हजारों आदमियों को निर्वासन न देता हो और जिसका लाखों रुपया उनपर खर्च न होता हो। आस्ट्रेलिया के सिवा ऐसी कौन सी जगह है जहां कैदियों के पूरे उपनिवेश बसे हों ? हम मन्दिरों में बैठ कर मानवता की भलाई की प्रार्थना करते हैं, कभी हमने सोचा है कि शाखा-लिन जैसी जगह में आदमियों पर क्या बीतती है ? शाखालिन ऐसी ही असहाय यन्त्रणाओं का स्थान है ! ऐसी यन्त्रणाओं का जिन्हें मनुष्यों के अलावा —चाहे वे स्वतंत्र हों या गुलाम —कोई दूसरा नहीं सह सकता। कल्पना कीजिये तो सही, हमने लाखों आदमियों को किस तरह सड़ने, मरने और कुत्ते की मौत पाने के लिये वहाँ जेलों में बन्द कर दिया है, कड़-कड़ाती ठण्ड में जंजीरों में बाँध कर हजारों मील हाँका है ! मैंने सुवोरिन को जोर देकर लिखा कि 'हां, हमें अपने देश के कलंक इस शाखालिन को देखने की बेहद जरूरत है, दुख मुझे यह है कि कोई और मेरे साथ नहीं था।"१ जैसे उस स्थान की याद करके चेखव उत्तेजित हो उठे, फिर जरा ऊँची आवाज में बोले —"आप विश्वास कीजिये, इतने मान-

---

०टाल्सटाय का एक उपन्यास। सुवोरिन को पत्र मार्च ९, १८९०।१

सिक अवसादों में, इतनी असफलताओं, कष्टों और मुसीबतों मे सिर्फ एक विश्वास ने मुझे जीवित रखा है, वर्ना मै कब का हार चुका होता, यह विश्वास है कि मै मानवता के लिये कुछ कर रहा हू। मेरे लिये ससारमे सबसे पवित्र है मानव का शरीर, मानव का स्वास्थ्य, विद्या, बुद्धि, प्रेम, आत्मा और स्वतंत्रता; झूठ और हिसा से मुक्ति; लेकिन मैने वहाँ इसी सबका ऐसा नाश देखा कि मै काँप उठता हूँ।१ सिवा फाँमी के मैने सभी कुछ देखा —एक बार मेरे सामने ही एक आदमी को नव्वे कोड़े लगाये गये, आप सच मानिये, मुझे तीन रात नीद नही आई —वही लटका हुआ आदमी वही टिखटी मेरी आँखों के सामने झूलती रही —इस दृश्य में मैं कितना परेशान रहा, मेरी आत्मा कितनी छटपाई —शायद इतना कष्ट उस बेचारे कैदी को खुद नही हुआ होगा ! लेकिन वहा के आदमी कैसे पत्थर हो जाते है कि आप विश्वास नहीं कर सकते। वे लोग इस कोड़ेबाजीमें मजा लेने लगते है—मिलीट्री ऑफिसर नहीं, यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट। शाखालिन में तीन महीने रहने के बाद मैने समझा कि किसी वस्तु को दूर से देखने और उसमें अपने आपको समा कर देखने मे क्या अन्तर है ? यों दोस्तायव्स्की की तरह "मुर्दों का घर" में लिख देना बड़ा आसान है कि वहाँ कि स्थिति यों बदल जायेगी, त्यों बदल जायेगी। शाखालिन से मैने यही सीखा कि किसी चीज की भावना के स्तर पर अनुभव करना और उसकी बौद्धिक कर्ज अदायगी में क्या फर्क है ? अगर हमें आदमी का जीवन की तरफ दृष्टिकोण बदलना है तो चीज को भावना के स्तर पर देखना होगा—दिमागी सतह पर नहीं।२ मेरी समझ में तो एक कलाकृति का सबसे गंभीर उद्देश्य उच्च नैतिक आदर्शों को चीख-चीख कर प्रचारित करना नहीं, बल्कि अपनी कहानी या नाटक के चरित्रों द्वारा पाठक या दर्शक के मन में क्रूरता, हृदयहीनता, या अन्याय्य के प्रति

चेखव की रचना 'शाखालिन' से।[1] २—प्लैश्चयेव को पत्र।[2]

ठीक वही भावनाएँ उसी वेग से जगाना है जो स्वयं लेखक ने अपने भीतर इन विकृतियों को देखकर अनुभव की है। शायद अगर मै शाखालिन की यात्रा न करता तो टाल्सटाय के आत्मघाती दर्शन से छुटकारा ही नही पा सकता था।"

"टाल्सटाय के दर्शन और शाखालिन की यात्रा मे क्या मतलब ?" स्वाभाविक प्रश्न निरंजन ने रख दिया।

"टाल्सटाय का यही सिद्धांत कि सत्याग्रह करो, पाप का प्रतिकार मत करो—या उसके प्रतिकार के लिये स्वयं कष्ट उठाओ, अपने पर जब्र करो, संयम से रहो ! शाखालिन की यात्रा ने मेरी आँखे खोल दी और मुझे लगा कि यह सब कितना बड़ा झूठ है। शाखालिन में कैदियों पर जो अत्याचार होते है, वहाँ के गवर्नर कोनोतोविच से मिलनेपर मुझे मालूम हुआ कि उन सबका उस बेचारे को कोई पता ही नही था ! आदमी वह भला था लेकिन अफसर लोग उसकी आज्ञाओं पर ध्यान ही नहीं देते थे। मैंने मध्य शाखालिन में दो महीनें बिताए, वहाँ 'दुईजेल' देखी। कैदी वहाँ लोहे की जंजीरों से बाँध कर गाड़ियों में जोते जाते थे, कोयले की खानों के मालिक उनसे बेगार कराके दुनिया भर का मुनाफा बटोरते थे —रूसी गवर्नमेण्ट को इस सबका पता भी नहीं है। खैर, इस सब को छोड़िये,लेकिन मुझे बताइये, वहाँ टाल्सटाय का यह दर्शन क्या कर सकता है ? क्या कैदियों का इस अत्याचार, कोड़ेबाजी, बेगार, और भ्रष्टाचार का प्रतिरोध न करना उनके अफसरों को अच्छा आदमी बना सकता है ? उनका हृदय परिवर्तन कर सकता है ? वहाँ वर्षों से यही होता आ रहा है। और अगर सचमुच पाप का प्रतिकार न करने का सिद्धान्त, प्रभावशाली सिद्धान्त है तो शाखालिन पहली जगहहै जहां उसका प्रभाव दिखाई देना चाहिये।[१] बकवास !" उत्तेजना से वे चुप हो गये, फिर बोले—

चैखव की किताब "शाखालिन"।[१]

"इसका मतलब जरा भी यह नहीं है कि मैं टालसटाय से घृणा करता हूं, नहीं टालसटाय मेरे पूज्य हैं। एक बार वे बीमार हो गये थे, तोमैं उनकी मृत्यु की कल्पना करके काँप उठा। मैं जानता हूँ उनकी मृत्यु मेरे जीवन में कितनी बड़ी खाई पैदा कर जायेगी। क्योंकि शायद मैंने दुनिया में किसी आदमी को इतना प्यार नहीं किया जितना टालसटाय को किया है। यों तो मैं नास्तिक हूं लेकिन टालसटाय में मुझे विश्वास है। और फिर सबसे बड़ी बात यह है कि साहित्य में जबतक टालसटाय है, तबतक लिखने में, लेखक कहलाने में मजा है, अच्छा लगता है ! अगर आप यह भी मानते रहें कि आप कुछ नहीं कर रहे, कुछ अच्छा काम नहीं कर रहे, तब भी यह सब इसलिये इतना भयंकर नहीं लगता कि टालसटाय हम सबके हिस्से का कर डालते हैं। हम सबके निकम्मेपन के लिये टालसटाय जो कुछ करते हैं,वह एक जस्टीफिकेशन है,एक्सक्यूज है ! तीसरे वह आदमी चट्टान की तरह दृढ़ है, जबतक वह जीवित है साहित्य में कोई भी गन्दगी, निम्न रुचि और द्वेष भावना पनप नहीं सकती। उसके बिना तो हम सब लोग बिना गड़ेरिये की भेड़ हो जायेंगे, हर चीज गड़बड़ा जायेगी।"[१] टालसटाय के बारे में बातें करते हुए चैखव की आँखें चमक उठीं, फिर मुस्करा कर बोले —"आपको मालूम है वे मेरे बारे में क्या कहते हैं ? गोर्की ने बताया एक बार वह अपने गास्पारा के भवन में पार्क में मुझे देखकर बड़बड़ा रहे थे "आह.. कैसा प्यारा आदमी है, कितना सुशील और नम्र,बिल्कुल एक युवती की तरह। और देखो, उसकी चाल भी कैसी लड़कियों जैसी है।" टालसटाय के इस वाक्य को याद करके वे जोर से हँस पड़े।

"लेकिन टालसटाय से शुरू में मिलने में तो आप बहुत हिचकिचाते रहे।" मैंने पूछा —"आपकी पहली मुलाकात ही तब हुई जबटालस-टाय ने कई बार मिलने की इच्छा प्रकट की। कोई कहता था कि टालस-

---

मेनशिकोव को चैखव का पत्र तथा गोर्की द्वारा चैखव के संस्मरण।[१]

टाय से आपके न मिलने का कारण यह था कि उनके 'यासन्या पोल्याना' महल की शानदार इमारत देखकर आपको भीतर जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी ?"१

"हिम्मत ?" चैखव जोर से हँस पड़े, "हिम्मत की आपने खूब कही ! नहीं, इसका असली कारण यह था कि तब मेरा विश्वास टाल्सटाय के उपदेशों से उठ चुका था। छ:-सात साल मैं उनके प्रभाव में रहा --और वह प्रभाव इसलिये नहीं था कि वे कोई बहुत अच्छी बात कह रहे थे,बल्कि वह बात जिस तरह से कहते थे --उनके उस ढंग ने मुझे सम्मोहित कर लिया था। शीघ्र ही यह सम्मोहन दूर भी हो गया और मैं विश्वास करने लगा कि संयम और आत्मदमन की अपेक्षा बिजली और भाप का--जिसका वे विरोध करते थे--ठीक उपयोग करने में मानवता की अधिक उन्नति है। युद्ध सबसे बड़ा अपराधहै और राजनैतिक बन्दियों पर अत्याचार भी ग़लत हैं, लेकिन इस सब का मतलब यह तो नहीं है कि आप हाथ कें बने जूते पहनें या मजदूरों और उनकी पत्नियों के साथ भट्टियों पर सोयें !--यही वजह है कि टाल्सटाय का मेरे लिये कोई अस्तित्व ही नहीं रहा२ और मुझे 'यासन्या पोल्याना' जाने की अपेक्षा समुद्र में नहाना और गप्पें मारना ज्यादा अच्छा लगता था।३ लेकिन जब मैं उनसे मिलने गया तो काफी अच्छा लगा। उनदिनों वे 'पुनर्जीवन' लिख रहे थे। मैं उन्हें ढोंगी समझता था लेकिन एक चीज ने मुझे आश्चर्य चकित कर दिया, वह थी तात्याना और मारिया,उनकी पुत्रियों की अपने पिता के प्रति भक्ति ! कैसी वे उनकी हर बात की देखभाल करतीं, उनकी दिनचर्या निश्चित करतीं, हमेशा उनके आगे पीछे मौजूद रहतीं। उसीसे प्रभावित होकर मैंने सुवोरिन को लिखा था; 'एक आदमी

अमेरिकन लेखक अर्नेस्ट जे. सिमन्स की पुस्तक लियोटाल्सटाय में।[१]
२७ मार्च १९५४ को सुवोरिन को पत्र।[२] जुलाई १८९० को पत्र।[३]

अपनी मंगेतर को धोखा दे सकता है, प्रेमिका को भ्रम में डाले रह सकता है, और स्त्री को बात तो यह है कि—यदि वह प्रेम में पड़ चुकी हो तो एक गधा भी उसे महान दार्शनिक ही दिखाई देता है—लेकिन लड़कियों की बात बिल्कुल ही अलग है। इतना सबकुछ होते हुए भी दूसरी मुलाकात के बाद ही मैंने उनके जीवन-दर्शन के खिलाफ कहानियां लिखनी शुरू कर दी थीं। 'किसान' उनके प्रभाव में आकर लिखी थी लेकिन 'सतखण्डे वाला मकान' और 'मेरा जीवन' में मैंने उनके दर्शन को कोसा था—वार्ड नं. ६ में मैंने बहुत अधिक कटु होकर उनके जीवन-दर्शन की खिल्ली उड़ाई है। उसका नायक एन्द्रीरागिन, पागलखाने का डाक्टर, जो बिल्कुल टाल्सटाय के विचारों का प्रतिरूप है और किसी को न तो कष्ट दे सकता है, न कष्ट उठाता देख सकता है—धीरे धीरे पागल हो जाता है। यह मेरा उनके दर्शन पर सबसे कठोर प्रहार था लेकिन मजा यह कि उसी कहानी को व्लादीमीर चैरत्कोव ने, जो टाल्सटाय के दर्शन का सबसे बड़ाप्रचारक था—इतना पसन्द किया कि अपनी कथा-साहित्य की सस्ती सीरीज में छापने की इच्छा प्रकट की। वह छपी भी। उसी कहानी ने मुझे उदारपंथियों के साथ कर दिया। जब यह 'रूसी विचार' पत्रिका में छपी, तो मैं प्रसन्नता से उछल पड़ा। मेरा तो अब भी विचार यह है कि टाल्सटाय महान व्यक्ति हो सकते हैं, लेकिन उनके लिये समय बर्बाद करना, खास तौरसे उनके दर्शन पर कहानी लिखने के लिये—बेकार ही है।"[१]

फिर ज़रा रुककर चैखव ने कहा—"जहांतक साहित्य का सवाल है वे महान स्रष्टा हैं। तुर्गनेव की रचनाएं मुझे अत्यधिक प्रिय हैं लेकिन उसकी कमजोरी यह है कि 'बाप और बेटे' में ऑजिन की माँ को छोड़कर सभी स्त्रियाँ एक सी हैं, चाहे वह लिजा की माँ हो या 'हैलेन' की, इसके अलावा लावत्स्की की माँ, को भी ले लें, जो एक गुलाम

. जुलाई ८, १८९२ को सुवोरिन को पत्र।[१]

की लड़की है या और भी जितनी लड़कियाँ या स्त्रियाँ है —सब गढ़ी-गढ़ाई हैं —नकली है और मुझे माफ कीजिये, बिल्कुल ऐसी हैं जैसी होती ही नही हैं। लिजा और हैलेन तो ऐसी लड़कियाँ ही नही है। 'धुएं' की इरीनी "बाप बेटे" की औदिन्त्सोवा—सब वही शेरनियाँ भूखी, जलती हुई-सी जैसे कुछ खोज रही हो —सब बेकार ! लेकिन जब आप टाल्सटाय के "अन्नाकैरेनिना" को याद करते है तो आकर्षक कन्धोवाली ये स्त्रियाँ उसके सामने टिकती नही है, हवा में घुल जाती है।१ इसी तरह "पुनर्जीवन" की मूलभूत धारणाओ के विस्तार—उनकी लम्बाई चौड़ाई और उपन्यास की विशदता, समृद्धि ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया, उसमें बस नैख्ल्युदोव और कात्या के संबध की अस्वाभाविकता और अस्पष्टता अच्छी नही लगी। वर्ना आप देखिये, उस व्यक्ति ने मौत से डरनेवाले आदमी की बेईमानी को कितनी सुन्दरता से चित्रित किया है जोइसवात को स्वीकार तो करता नही है लेकिन इसके लिये बुरी तरह शास्त्र वाक्यों से चिपटा हुआ है।२ वे स्वय भी तो मौत से ऐसे ही डरते ह।३ जहाँ तक व्यक्तिगत सम्बन्धों की बात है वह बिल्कुल अलग है। दिसम्बर १९०१ में जब "रूसी-परिषद" के साहित्य-विभाग के सदस्य की तरह गोर्की को चुनकर, उसके राजनैतिक विचारों पर आक्षेप करते हुए स्वय ज़ार इत्यादि ने दो ही महीने बाद उसका चुनना अवैध बता दिया तो मैंने सबसे पहली सलाह इस सम्बन्ध में टाल्सटाय से ही ली थी। मैं और टाल्सटाय दोनों एक ही समय सदस्य चुने गये थे। राज्य के इस हस्तक्षेप को मैंने सभी साहित्यिकों का अपमान समझा और मैंने और कोरोलेंको ने इस पर परिषद से त्याग पत्र देकर एक विज्ञप्ति निकालने का निश्चय किया। टालसटाय ऐसे फक्कड़ है कि जब उन्हें सम्मानित

सुवोरिन को पत्र।[1] फरवरी १९०० को गोर्की को पत्र।[2]
गोर्की द्वारा लिखित टालसटाय के संस्मरण।[3]

सदस्य चुन लिये जाने की सूचना आई. तो उन्होंने उसकी प्राप्ति सूचना तक नहीं दी। वे किताब पढ़ रहे थे, मैंने जब यह बात कही तो बोले –'तुम त्याग पत्र को कहते हो, अरे, मैं तो अपने आपको सदस्य ही नहीं मानता।' और निहायत इत्मीनान से किताब पढ़ते रहे।"१ फिर चैखव ने जैसे एक ही करवट लेटे रहने से थककर करवट बदली।

"तो फिर आपने त्याग-पत्र दे दिया ?" निरंजन ने पूछा–आश्चर्य से।

"हाँ, हम और कोरोलैंको सलाह करने के लिये याल्टा में मिले और मैंने २५ अगस्त को त्याग-पत्र भेज दिया। लेकिन इसमें आश्चर्य की बात है ?"

"कम आश्चर्य नहीं है।" निरंजन ने गंभीरता से कहा –"आप शायद यह भूल गये हैं कि हमलोग हिन्दुस्तान से आ रहे हैं, जहाँ विचारों की सहिष्णुता, पवित्रता और उच्चादर्शों के सिद्धांत तो खूब जोर-जोर से बघारे जाते हैं; खूब जोर-जोर से प्राचीन संस्कृति और आध्यात्मिकता का ढोल पीटा जाता है, लेकिन आचार इतना कमीना है कि आप घृणा करेंगे ! यह तो पूरे रूस में राज्य की सबसे प्रसिद्ध परिषद की सदस्यता की बात थी अगर कोई और छोटी-मोटी जगह ही होती, किसी व्यक्तिगत परिषद की ही बात होती तो हजारों कहने वाले ऐसे मिल जाते, जो आपके साथियों में से ही होते, कि अच्छा हुआ गोर्की को निकाल दिया गया –साला कम्यूनिस्ट था ! और दूसरे ही दिन गोर्की की खाली जगह भरने के लिये आपसे सिफारिश कराने पाँच उम्मीदवार आ डटते, जिसमें से कमसे कम तीन तो साहित्य के डाक्टर होते, जो साहित्य में भौंपू लगा-लगाकर अपने आपको प्रगतिशील ईमानदार और कलाकार घोषित करते रहे होंगे।"

कोरोलैंको को पत्र।[1]

"नहीं, हम लोगोंमें यह बात नहीं थी।" चेखव ने थोड़ा गर्व से कहा—"विचारों और सिद्धान्तोंका इतना विरोध होने हुएभी टालसटाय ने अपने मित्रों में बैठकर मेरी 'प्रियतमा' आदि कहानियों का अपनी रचनाओं की तरह परायण किया है, बुरी तरह प्रशंसा की है और एक जगह तो उन्होंने यहाँ तक लिखा कि जब-जब मैंने उस कहानी को पढ़ा, मेरी आँखों में आँसू आये बिना न रहे।१ उन्होंने ही प्रकाशक मार्क्स से मेरे लिये कहा कि मेरे पूरे साहित्य को छापे। यही बात गोर्की के साथ है उसने मेरे और टाल्सटाय के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसे देख कर कभी नहीं कहा जा सकता कि हमलोगों में अत्यधिक सौहार्द और आन्तरिक सम्बन्ध नहीं था।"२

फिर उन्होंने अपनी बात को पकड़ते हुए कहा —"टाल्सटाय को सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर था कि मैं उनके सिद्धान्त को समझ क्यों नहीं पाता। टाल्सटाय, अमरता का वही अर्थ लेते हैं जो "कांट" लेता है। उनका विचार है कि हम सभी मनुष्य और पशु, प्रेम और विवेक—जो मनुष्य का चरम ध्येय है—के अनुसार ही रहते रहेंगे, जबकि इस "चरम ध्येय" के मूल तत्व और उद्देश्य कम से कम हमारे लिये तो रहस्य ही है। मेरे लिये यह "चरम ध्येय" या "परम शक्ति" अपने आप को एक आकार-हीन, एक जमते हुए समूह के रूप में अभिव्यक्त करती है, ऐसे समूह के रूप में जिसमें मेरा 'अहम' मेरी चेतना और व्यक्तित्व विलीन हो जायेंगे —मेरे लिये ऐसी अमरता का न तो कोई उपयोग है और न मैं इसे समझ ही सकता हूं।"३

टाल्सटाय द्वारा लिखित 'डार्लिंग' की आलोचना।[1]

गोर्की की पुस्तक "मेरे चेखव टालसटाय और एन्द्रीव के संस्मरण"।[2]

२८ मार्च १८९७ को मॉस्को क्लिनिक में टाल्सटाय के मिलने आने के बाद चैखव का मैन्शिकोव को पत्र।[3]

टालसटाय सम्बन्धी इस आवान्तर प्रसंग के बाद चैखव फिर अपनी पहली बात की ओर मुड़े–"हाँ, तो हमलोग शाखालिन की बात कर रहे थे, मैं बता रहा था कि यदि टाल्सटाय का पाप के प्रति प्रतिकार न करने और अहिंसा का सिद्धान्त जरा भी मानवमात्र की भलाई करने की शक्ति रखता होता तो शाखाल्नि पहली जगह है जहाँ इसका प्रभाव दिखाई देना चाहिये था। लेकिन इस तरह का वहाँ कुछ नहीं हुआ, इसके विपरीत इस दब्बूपने ने अत्याचारियों को और भी क्रूर बना दिया है। उस प्रदेश को उन्होंने क्या बना रखा है, मैं आपको वहाँ की स्थिति बताऊं"–खाँसकर चैखव ने कहा –"मैंने एक लड़के से पूछा –'तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'तुम्हारा क्या मतलब, तुम अपने बाप के साथ रहते हो और तुम्हें बाप का नाम नहीं मालूम ? तुम्हें शर्म आनी चाहिये।'

'वह मेरा असली बाप नहीं है।'

'अच्छा, यह बात है ! लेकिन क्यों ?'

'वह सिर्फ मेरी माँ के साथ रहा है।'

'तुम्हारी माँ शादीशुदा है या विधवा ?'

'वह विधवा है, अपने पति को मारने के अपराध में आयी थी।'

'तुम्हें अपने बाप की याद है ?'

'नहीं, मैं जेल में पैदा हुआ था मैं नाजायज सन्तान हूं।' शाखालिन की स्त्रियों की संख्या पूरी आबादी की ११.५ प्रतिशत है और वे सभी गर्भ धारण करने योग्य आयु की हैं। बच्चे मरियल पीले और उदास हैं ! एक विचित्र बात है, अधिकांश अपराधिनी स्त्रियों की सजाओं के कारण प्रेम की विकृतियाँ या घरेलू झगड़ों के विस्फोट हैं 'मैंने अपने पति को मारा है।' 'मैं सास के कारण हूँ' अधिकांश स्त्रियों ने यही उत्तर दिये। यहाँ तक कि आगजनी आदि वाली भी प्रेम के ही कारण अपराधिनी थीं। स्त्री

कैदी अलैक्जैंड्रोव्स्क आईं और वहीं से उनकी छँटाई शुरू हुई—कुछ अफसरों के "हरम" में चली गयीं; कुछ जेल के वार्डनों और क्लर्कों को मिली, अधिकांश उन कैदियों में बाँट दी जाती थी जो सजा के बाद वहीं जम जाते हे और रईस बन जाते हैं। मुझे वहाँ के अफसर लोग कुत्ते-बिल्लियों से भी गये गुजरे लगे। वहाँ के गवर्नर ने एक बार भूतपूर्व कैदियों के समूह से मेरे सामने ही कहा —'मैं ध्यान रखूंगा कि आपलोगों को स्त्रियों का ठीक ठीक हिस्सा मिले।' इसी तरह एक अफसर मुझसे बोला —'आप ही देखिये, ये लोग बसन्त में तो औरतें भेजते नहीं, जाड़े में भेजते हे। जाड़े में औरत का कोई उपयोग नहीं है—उस समय तो वह किसानों के ऊपर बोझ है।' मुझे उसकी बात सुनकर याद आया कि भूसा तेज हो जाने पर लोग घोड़ों के बारे में भी ऐसे ही बातें करते है। मुझे तो विश्वास है शाखालिन की दो चार जेलों में रहकर स्त्रियों में स्त्रीत्व नाम की चीज ही नहीं रह पाती। कुछ औरतों ने मुझे यह भी बताया कि वे अपने पतियों के पास की अपेक्षा यहाँ ज्यादा अच्छी तरह रह रहीं हैं, और चूंकि वे स्वतंत्र हैं इसलिये उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है। अच्छा एक बात और, इन 'स्वतंत्र' स्त्रियों की स्थिति भी वहाँ कम आश्चर्यजनक नहीं है जो अपने पतियों या बच्चों के साथ जाती हे। उनकी हालत कैदी स्त्रियों से ज़रा भी अच्छी नहीं है, उन्हें क्योंकि कोई सरकारी सहायता तो मिलती नहीं है, इसलिये अपना शरीर बेचती हें और रहती हैं। दिन भर में पाँच-दस कॉपेक मिल जाते हैं। उनके पति लोग भी इस सबके अभ्यस्त हो जाते हैं। उनलोगों की लड़कियाँ भी जैसे ही चौदह-पन्द्रह साल की हुई —वे भी उसी जिन्दगी में पड़ जाती हैं। किसी भी कोमल, उच्च भावना की तो शाखालिन में जगह ही नहीं है १ आप विश्वास कीजिये, जब मैं व्लादिवोस्तक पहुँचा तो ऐसा लगा जैसे कब्र

चैखव की किताब "शाखालिन"।[१]

से तीन महीने बाद निकल कर पहुँचा हूँ। "बायकल" जहाज पर एक अफसर की पत्नी लौट रही थी, वह बात-बात में खुलकर और खिलखिलाकर हँसती थी --सचमुच मैं ऐसी हँसी देखने के लिये तरस उठा था ! वहाँ से जब मैं हाँगकांग आया तो मालूम हुआ कि यहाँ चीनियो का अंग्रेज व्यापारी बड़ी बुरी तरह शोषण करते है --इसका प्रमाण मुझे मिला उस समय, जब मै आदमियों द्वारा खीची जाने वाली एक सवारी 'जिन रिक्शॉ' पर बैठा, लेकिन सच मानिये मुझे वह रूसी गवर्नमेण्ट के शोषण के आगे कुछ भी नही लगा --अंग्रेज शोषण करते है तो सड़क तार, रेल तो देते है, ये कम्बख्त तो कुछ भी नहीं करते !"१

एक गहरी साँस लेकर वे बोले--"यहाँ कितनी गरीबी है, कितना अज्ञान और अनाचार है कि शायद निन्यानवे चोरों मे एक सज्जन आदमी रूस की इज्जत रखे हुए है।२ आते समय तो खैर हाँगकांग, सिगापुर, लंका इत्यादि पानी के रास्ते से आये थे --लेकिन शाखालिन जाते समय साढ़े छ: हजार मील के साइबेरिया के विशाल मैदान ने और स्वयं शाखालिन ने मेरी आँखें खोल दीं --जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल दिया।"

"साढ़े छ: हजार मील !" आश्चर्य से मैंने दुहराया--"बिना रेल या वैज्ञानिक वाहनों३ के वास्तव में आश्चर्य ही है।"

"उस समय तो नहीं, आश्चर्य तो मुझे अब लगता है" चेखव उत्साह से बोले --"१९ अप्रैल १८९० को सिरसे पाँव तक कील कॉटे से लैस होकर रिवाल्वर इत्यादि लेकर मॉस्को से चला तभी बड़ी जोर से खाँसी के साथ खून गया था। और इस सफर में मैंने सभी तरह की यात्राओं के मजे

सुवोरिन को ९ दिसम्बर १९९० को पत्र।[१-२]

उस समय तक ब्लाडीवोस्तक से लैनिनग्राड जाने वाली संसार की सबसे बड़ी रेल नहीं बनी थी।[३]

लिये —मॉस्को से येरोस्लाव्ल तक रेल में, वहाँ से प्रैम तक नाव पर —पहले वोल्गा फिर कामा; प्रैम से त्युमैन तक फिर रेल में, त्युमैन से बायकाल झील तक घोड़ागाड़ी में, झील को नाव द्वारा पार करके फिर घोड़ा गाड़ी में स्रेतेन्स्क तक, स्रेतेन्स्क से प्रशान्त सागर के बन्दरगाह निकोलायव्स्क तक आमूर नदी द्वारा नाव में; तब तातारी समुद्र को पार करके साखालिन तक स्टीमर में —कैसा भयंकर सफर था ! ओफ ! दो एक बार तो मैं मरते-मरते बचा।" चैखव की आँखों के आगे जैसे वे दृश्य नाचने लगे। वे कहे जा रहे थे "त्युमैन से मैं तोम्स्क तक नाव से जाना चाहता था लेकिन उसके लिये पन्द्रह दिन रुकना पड़ता, इसलिये मैंने एक गाड़ी किराये की ली। अब आप साइबेरिया में, दुनियां की उस सबसे बुरी सड़क पर कई हजार मील की यात्रा की कल्पना कर लीजिये—कड़कड़ाता जाड़ा, बर्फ, ऊबड़खाबड़ सड़क—सपाट, ऊजड़ बर्फीले मैदान—कहीं कोई जान न पहचान, कोई साथ नहीं और एक घोड़ा गाड़ी पर चैखव साहब चले जा रहे हैं उछलते-कूदते। इस यात्रा में तो कई बार खून की कै की, मन बड़ा भारी-भारी रहा।३ मई को मैंने त्युमैन छोड़ा, तब तक मैं एक तरह सिर से पाँव तक शहीद हो चुका था —बर्फीली हवाएं चलती थीं पानी बरसता था और जैसा कि बाद में कुछ लोगों ने कहा भी डॉन क्विक-जोट की तरह हम चले जा रहे होते थे। कहीं नदियों में ऐसी बाढ़ आई होती थी कि पुल तक बह चुके थे और कहीं झीलें तक जमी मिलती थीं। एक बार हम झील में भी चले गये—पतली-पतली धरती की पट्टियों को पार करके इर्त्यिश नदी के किनारे पर पहुंचे, इसका किनारा सिर्फ दो फीट पानी की सतह से ढालू है, गँदला कीचड़दार फिसलना किनारा है और सफेद लहरें आकर टकराती हे, नदी गरजनी नहीं है बल्कि पानी में से ऐसी आवाज आती है जैसे उसके तले में मुर्दों के ताबूत या अर्थियाँ लुढ़क रही हों१ कैसा भयानक था ! इस तरह हम तोम्स्क आये,

१ मेरिया किसेलेवा को ७ मई १८९० को पत्र।

और यहाँ से कोर्सनोयार्स्क तक जो भयंकर गर्मी, धूल आँधी मिली उसने तो बिल्कुल दम ही निकाल ली—ऐसी मुसीबतों में शायद मैं उलटा लौट आता, किन्तु एक तो आत्मसम्मान नहीं मानता था, दूसरे इन मुसीबतों को जल्दी से जल्दी पार कर जाने की जल्दी! मैं चलता ही चला गया। एक बात है, साइबेरिया के किसान बड़े ईमानदार हैं—आप उनकी झोपड़ी में अपना सामान छोड़ जाइये—मजाल क्या जो एक तिनका भी चला जाये।" फिर वे बहुत ही विभोर होकर बोले —"हाँ, एक बार बड़ा मजा हुआ। वहाँ गाड़ियाँ बड़ी तेज चलती हैं। मैं ऊंघ रहा था—कभी कभी आस-पास का दृश्य देख लेता। अचानक पहाड़ियों की खड़खड़ाहट सुनी, तीन घोड़े वाली एक डाकगाड़ी बड़े भयंकर वेग से भागी चली आ रही थी, मेरे कोचवान ने जल्दी से मोड़कर गाड़ी बचाई—इसके पीछे एक और गाड़ी, गाड़ीवान ने फिर सीधे को गाड़ी बचाई अब कम्बख्ती देखिये—वह गाड़ी अपने बायें को मुड़ गयी —और जबतक मैं चीखूं, भयंकर वेग से दोनों टकराईं—घोड़े आपस में उलझ गये, मेरी गाड़ी हवा में उछल गयी और मैं ठीक सड़क के बीच में दूर जा पड़ा, मेरी खोपड़ी पर मेरे ट्रंक आ पड़े! तब तक देखें तो एक तीसरी गाड़ी उतने ही वेग से चली आ रही है —अब अगर मैं छलाँग मार कर न बचूं तो मैं, मेरे ट्रंक वहीं चटनी हो जायँ —मैं जोर से चिल्लाया—'गाड़ी रोको!' तभी चौथी गाड़ी दिखाई दी—तबतक यह रुक गयी थी। बात क्या थी कि, डाक देकर ये लोग घर लौट रहे थे, और घर लौटने की जल्दी में पहला गाड़ी वाला गाड़ी को खूब तेज भगा रहा था, शेष सोये हुए थे। घोड़े अपने आप भाग रहे थे। उस दिन मैं न बचता तो हाथ-पॉव तोड़कर ही घर लौटता। यह गाड़ी मैंने खरीद ली थी, इसे काफी नुकसान के बाद आमूर पर बेच दिया। इस पूरी यात्रा का मैंने तो यही नतीजा निकाला है कि भगवान की यह दुनिया बड़ी सुन्दर है, बस इसमें एक ही चीज है जो सुन्दर नहीं है—वह हैं हमलोग — हमलोगों में कितनी कम न्याय और नैतिकता

है ! राष्ट्रीयता का कितना गलत अर्थ हमलोगों ने लगा रखा है, अख़बार चिल्लाते है, 'हम अपने देश को प्यार करते हैं', लेकिन यह प्यार किन बातों में दिखाई देता है ? आलस्य, मूर्खता, बेवकूफी के सिवा और हमारे पास क्या है ? 'सम्मान' का अर्थ हमारे लिये है वर्दी का, कपड़ों का सम्मान ।"१

चेखव द्वारा दिये गये शाखालिन यात्रा के वर्णन से वास्तव में हमलोग सिहर उठे, पता नहीं कैसे यह बीमार –हर कदम पर खून की कै करता हुआ यह आदमी इतनी यात्रा कर सका ! विभोर होकर मैंने कहा –"ये सब वर्णन तो आपको किसी अच्छे उपन्यास में प्रयुक्त करने चाहिये थे –इतने प्रभावशाली और इतने सजीव ।"

"यही तो दिक्कत है बन्धु" चेखव ने कहा –"उपन्यास तो मैं लिख ही नहीं सका । 'नवयुग' में मैंने शाखालिन के संस्मरण अवश्य लिखे लेकिन उपन्यास मेरे बस के बाहर की बात थी ।"

"कभी आपने उपन्यास लिखने की कोशिश भी नहीं की ?" निरंजन ने पूछा ।

"नहीं ऐसा तो नहीं है । शुरू में मैंने कई बार उपन्यास लिखने की कोशिश की, लेकिन सन्तोष ही नहीं हुआ । १८८७ में एकबार अस-फल होकर दो साल बाद फिर लिखने का निश्चय किया । उन दिनों तो उपन्यास लिखने के ऐसे वलवले उठते थे कि अपने सभी मित्रों प्लैश्चयेव, ग्रिगोरोविच आदि सभी को मैंने लिख दिया कि मैं अपन्यास लिखने जा रहा हूँ और उपन्यास ऐसा शानदार होगा कि आप लोग देखते रह जायेंगे, बड़े धीरे-धीरे, सँभल-सँभल कर मैं उसे लिख रहा हूँ; लेकिन डर यह है कि कहीं हिम्मत बीच में ही जबाब न दे जाय ! अगर यह उपन्यास भी असफल हो गया तो फिर मैं शायद ही उस धक्के को सँभाल सकूं । मेरे उस उपन्यास में कई परिवार, पूरा एक देश, उसके जंगल, नदी, जहाज,

---

९ दिसम्बर १८९० को सुवोरिन को पत्र ।[१]

रेल सभी कुछ थे —मुख्य चरित्र केवल दो थ । तभी शायद जोश मे सुवो-रिन को भी लिखा था–'म अन्धाधुन्ध उपन्याम लिख रहा हूँ,और लिखने का कोई अन्त नही दीखता । नो चरित्र स्पप्ट हो चुके हे–क्या शानदार प्लॉट है ! नाम रखा है "मेरे मित्रो के जीवन की कहानियाँ', इमका हर अध्याय एक स्वतन्त्र कहानी होगी, इसका अर्थ यह कभी नही कि वह उपन्यास छोटी-छोटी कहानियों ओर टुकडो का संकलन होगा, नही वह सुसम्बद्ध उपन्याम है !' उस उपन्यास मे मेरे दो उद्देश्य थे, एक तो जीवन जैसा है उमे वैसा का वैसा चित्रित कर देना, दूसरे वह कैसे सामान्य मे गलत रास्ते पर प्रस्तुत हो जाता है —इमका चित्रण ! हम मब जानते है कि बेईमानी या गेर ईमानदारी क्या है,लेकिन सम्मान और समादरणीय क्या है,यह हम नही जानते ! मैंने इसका ढाँचा लिया है–पूर्ण स्वतंत्रता ! झूठ, दुराग्रह, अज्ञान, पाप, और वासना सबसे पूर्ण मुक्ति !' हालाँकि यह ढाँचा नया नहीं था ।१ मेरी इच्छा यह थी कि मै उस शानदार उपन्यास को पब्लिक नीलाम में बेचता ओर फिर विदेशों मे घूमने निकल जाता । कभीकभी तो उसे लिख डालनेकी बड़ी विकट इच्छा होती,२ लेकिन होता यह कि उपन्याम मुझमे धीरे-धीरे लिखा जाता और जितना कुछ लिखा जाता उससे मुझे झुझलाहट अधिक होती । वह उपन्याम मुझसे लिखा ही नही गया —मैंने उसे फिर फाड़ डाला । तब मे मान गया कि मुझ मे वर्णन करने, अपने विचारों को नेरेटिव फॉर्म में प्रकट करने का अभ्यास नही है , इसलिये मै उपन्यास की कला मे माहिर नही हो सका । फिर मैंने उपन्यास लिखने का विचार ही त्याग दिया और नाटक लिखने में हाथ लगाया, क्योंकि वर्णनात्मकता की अपेक्षा मुझमें 'नाटकीयता' अधिक थी ।"३

प्लैश्चयेव से वार्तालाप ।[1] सुवोरिन को ९ जून १८८९ को पत्र ।[2] मार्च १८८९ को सुवोरिन को पत्र ।[3]

"तो क्या उपन्यास लिखने का भेद आप सिर्फ 'वर्णनात्मकता' और .'नाटकीयता" मानते है ?"निरंजन ने प्रश्न किया, हालाँकि अब हमलोगों पर मन ही मन बोझ पड़ने लगा था कि काफी देर हो गयी है।

"अगर असली कारण पूछें तो इसका कारण कि मैं उपन्यास की कला को क्यों साध नहीं पाया, यह था कि मैंने जीवन की कोई राजनैतिक, दार्शनिक और धार्मिक रूप-रेखा अपने सामने नहीं रखी थी; और जो कुछ भी थी वह मैं हर महीने बदलता रहता था। यही कारण है कि मुझे सिर्फ इन्हीं वर्णनों में अपने आपको बाँधकर सन्तोष करना पड़ा कि कैसे मेरे चरित्र प्यार करते हे—बच्चे पैदा करते हैं बातें करते है और मर जाते हैं।"१ चेखव ने बहुत ईमानदारी मे कहा।

"हाँ, वास्तव में यह है तो बहुत आश्चर्य की बात कि आपके सम-सामयिकों मे गोर्की के सामने एक बहुत स्पष्ट जीवनदर्शन था और उसने अपनी पूरी शक्ति उस ओर लगा दी, हर लाइन में उसका वह उद्देश्य गूजता था; इमी तरह गलत या सही टाल्सटाय के मामने एक विचारधारा थी और उनका लेखन उसीसे अनुप्रेरित और अनुप्राणित था, तब आपके लेखन में ऐसे किसी उद्देश्य को साकार करने का प्रयत्न नहीं है।" मैंने प्रश्न किया।

"देखिये मुझे गलत मत समझिये !" चेखव ने कहा—"मैंने सात-आठ सौ कहानियाँ लिखी है—और अगर उसमें जरा भी भी कला है तो एक बात और याद रखिये। यह मेरा विश्वास है कि जो व्यक्ति किसी से डरता नही है, कुछ चाहता नहीं है, और किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं रखता, वह और चाहे जो बन जाये कलाकार नहीं बन सकता२ और जैसा कि मैंने एक बार लिडिया को लिखा था 'मैं मानवता के लिये कुछ कर रहा हूँ,यही एक भाव है जो मुझे जीवित रखे हुए है वर्ना मैं कबका आत्महत्या

अक्टूबर १८८८ को ग्रिगोरोविच को पत्र।[1] चेखव के एक पत्र से।[2]

कर चुका होता !' आप मेरी कला पर सब दोष लगा सकते हैं लेकिन मने ईमानदारी से मानवता की भलाई के लिये,मनुष्य से प्यार के लिये कुछ नही किया,ऐसा आप नही कह सकते। अब आइये,गोर्की और टाल्सटाय पर, टाल्सटायपर काफी बाते कर चुके है इसलिये एक बात कहकर फिर चलेंगे। अक्सर मेरी भर्त्सना की गयी है –उन भर्त्सना करने वालो मे टाल्सटाय भी है कि मैंने बहुत छोटी-छोटी चीजो पर लिखा है,मेरे पास कर्मठनायक नही है, क्रान्तिकारी नही है, अलैक्जेन्द्र और मकादोन जैसे, यहा तक कि लेस्कोव की कहानियों जैसे ईमानदार पुलिस इन्स्पेक्टर भी नही है" वह जरा व्यथा से मुस्कराये –"लेकिन आप मुझे बताइये, मै यह सब कहा से लाता ? घोर साधारण हमारा जीवन है, हमारे शहर ऊबड-खाबड है,गॉव गरीब है और लोग जीर्ण-शीर्ण है। जब हमलोग बच्चे होते है तो गिलहरियो की तरह घूरो पर आनन्द से खेलते है, और जब चालीस पर पहुँचते है तबतक बुड्ढे हो चुके होते है –मृत्यु के बारे मे सोचना शुरू कर देते है.........किस तरह के नायक हमलोग है ?१ आप बताइये कहाँ से लाऊ मै नायक ?"

कुछ देर चुप रहकर चेखव बोले –"और रहा आपका गोर्की, सो मुझे माफ कीजिये, सचमुच मेरी समझ मे नही आता कि आप और आप जैसे युवक क्यों उसपर लट्टू है ? निश्चय ही वह एक प्रतिभाशाली आदमी है लेकिन आपलोगो को पसन्द है, उसका 'बाज का गीत", "तूफानी समुद्री चिड़िया" ! यह सब साहित्य नही है –यह सब गुंजने और गरजने वाले शब्दों का समूह है। मै जानता हू, आप कहना चाहते है –राजनीति ! लेकिन मुझे बताइये यह कौन-सी राजनीति है कि "निश्शक और निर्भय बढो !" यह राजनीति भी तो नही है। अगर आप मुझे आगे बढने के लिये ललकारते है तो आपको राह दिखानी होगी, लक्ष्य बनाना

मोरोजोव की जमीन्दारी मे तिखोनोव से वार्तालाप।[१]

होगा, साधन समझाने होंगे ! आजतक राजनीति में इस तरह के वीरता के उन्माद या आवेश से कुछ नहीं मिला।"१ इस बार चैखव जरा उत्साह मे बैठ गये, और बोले –"गोर्की से मुझे दो तीन शिकायतें हैं–सबमे अधिक शिकायत है मुझे उसकी शैली से, उस कम्बख्त की शैली इतनी संगीतमय है, इतनी प्रवाहपूर्ण है कि जरा सी भी नीरसता या कहिये रूखापन–रफ़-नैस –फौरन पकड़ में आ जाती है। जरूरत से ज्यादा हर चीज का मानवीकरण उसे खा जाता है, "समुद्र उच्छ्वसित होता है", "आकाश देखता है", "प्रकृति फुसफसाती हैं, बोलती है या उदास दिखाई देती है" –ऐसे प्रयोग, हो सकता है आप इन पर लट्टू हों –लेकिन ये सब बड़े भाड़े और बाजारू प्रयोग हैं। इसमें वर्णन बड़ा एकरस –कभी जरूरत से ज्यादा मीठा और कभी कभी जरूरत से ज्यादा अस्पष्ट बन जाता है। प्रकृति के वर्णन में विविधता, विशदता और अभिव्यंजना केवल सादगी मे हीप्राप्त की जा सकती है।"२ चैखव ने अपनी बात को और साफ करने की कोशिश की –"आपने पढ़ा –'समुद्र खिलखिलाता है' और आप उस पर मर गये उस जगह अटक गये। आप समझते है आप इसलिये अटक गये कि कोई बहुत ही कलापूर्ण और अच्छी चीज पढ़ी है। लेकिन दरअसल बात यह नहीं है–बात यह है कि आप समझ नहीं पाते कि सचमुच समुद्र हंस या खिलखिला कैसे सकता है ! –समुद्र न हंसता है न रोता है; वह गरजता है, पछाड़े मारता है और चमकता है ! टालसटाय के वर्णन देखिये–सूरज निकलता है और डूबता है, चिड़ियां गाती है –वहाँ न कोई हंसता है न सिसकता है ! कला में सबसे बड़ी चीज है सादगी !"

"और दूसरी चीज" मैंने पूछा। एक लेखक–महान लेखक दूसरे के बारे में बात करे –जबकि समसामयिक होने के अलावा, वह स्वयं भी कम महान न हो, तो बातचीत काफी रोचक हो जाती है।

मोरोजोव के यहाँ तिखोनोव से वार्तालाप।[1] ६ नवम्बर १८९२ को बाद गोर्की को दूसरा पत्र।[2]

"दूसरी मुख्य चीज है।" चेखव बैठ गये थे,मेजपर पड़े सिगरेट के डिब्बे से सिगरेट निकालकर उन्होंने हमारी ओर बढ़ाई, हमारे हाथ जोड़ देने पर होठों में सिगरेट लगाकर जलाया और हाथ हिलाकर दियासलाई को एशट्रे में डालते हुए,जैसे स्वयं ही बोले, "वैसे खाँसी की वजह से मैं भीकम कम ही पीता हूँ ! हाँ तो"–फिर मुंह से धुंआ निकालते हुए सिगरेट उगँ-लियों में लेकर बोले –"उसकी दूसरी चीज है कि उसमें संयम नहीं है, वह नहीं जानता कि कहाँ उसे कलम रोक देनी चाहिये। वर्षों से मेरे पास महत्वाकांक्षी नये लेखकों के पत्र आते रहे हैं लेकिन जैसे ही एकदिन अक्टू-बर (१८९८) में मेरी डाक में एक किताब आई – और एक बड़ा ही विनम्र-सा पत्र आया–इस पत्र लेखक का नाम मैंने पहले कभी नहीं सुनाया था तभी मुझे उसी समय लग गया था कि मैं एक "कलाकार" से परिचय पा रहा हूँ। उसमें रचनात्मक लेखक के सभी सच्चे गुण थे –सबसे बड़ी चीज थी उसकी समक्ष–वस्तु के निरीक्षण और अनुभूति की उसमें अद्‌भुत प्रतिभा थी –जैसे सबकुछ उसकी हथेली पर रखा हो ! लेकिन बस उसमें कमी थी तो यही कि कलम पर नियंत्रण नहीं था। गोर्की ऐसे दर्शक की तरह है जो अपने जोश और उत्साह को ऐसे दिल खोलकर प्रकट करते हैं कि न तो खुद ही कुछ सुन पाते हैं,क्या अभिनेता कह रहा है, और न दूसरों को सुनने देते हैं ! वार्तालापों के बीच में जब वह ऐसा अनियन्त्रित वर्णन देने लगता है तो इच्छा होती है कि ये वर्णन क्या कुछ और कसे नहीं जा सकते थे ? क्या दो चार लाइनें काटी नहीं जा सकती थीं ? यही वर्णन का ढीलापन उसके प्रेम और स्त्रियों के साथ है।१ मैंने उसे लिखा था कि "तुम्हारे सभ्य और शिक्षित लोगों के वर्णनों में एक अजब तरह का खिंचाव और घुटन रहती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुमने उन्हें ध्यान से देखा नहीं है; नहीं तुम उन्हें अच्छी तरह जानते हो, लेकिन

---

१६ नवम्बर १८९८ को गोर्की को पत्र।[1]

तुम इस विषय में अधिक आश्वस्त नहीं लगते कि उन तक किस कोण या दिशा से पहुँचा जाय !" वे सिगरेट पीने लगे ।

गोर्की के बारे में चैखुव के यह विचार सुनकर हमें वास्तव में बड़ा आश्चर्य हो रहा था । इन बातों के अलावा भी आश्चर्यएक और बात से था । बेचारे चैखुव को यह पता नहीं था कि गोर्की की मृत्यु के दस साल बाद ही हिन्दुस्तान में कृष्णचन्दर नामका एक और लेखक धूम्रकेतु की तरह उठेगा जो गोर्की की निरीक्षण, अनुभूति और दृष्टि इन तीनों विशेषताओं को ठोकर मार कर उसकी शैली और लेखन के सारे दुर्गणों को समेट लेगा ।

"आपने मेरे उपन्यास लिखने की बात कही" –चैखुव कह रहे थे, "आप गोर्की के 'फोमा जॉर्जियेव' को लीजिये –जैसे किसीने फुटा लेकर सीधी लाइन खींच दी हो–सब कुछ एक ही चरित्र के आस-पास जमा कर दिया गया है । उपन्यास लिखने में सबसे अधिक जानने की जरूरत है 'लॉ ऑफ सिमेट्री' –ढेर या समूह में से सन्तुलन-समतोल ! उपन्यास तो एक महल है–पाठक को आप स्वतंत्रता दीजिये कि वह उसमें जहाँ चाहे जाय ! जैसे किसी अजायब घर में ले आये हों,इस तरह आप उसे उबाइये या चौंकाइये मत ! कभी-कभी आपको उसे लेखक और प्रमुख पात्रों दोनों से हटाकर आराम भी देना होगा–यानी उस जगह प्रकृति-वर्णनों–लैण्ड-स्केप चित्रण–का उपयोग है, या कुछ हल्की-फुल्की हास्यरस की चीज हो, कथानक में कोई मोड़ हो–या कोई नया चरित्र हो । गोर्की से मैंने हजारों बार कहा लेकिन वह सुनता ही नहीं । हमारी भाषा में उसके नाम का अर्थ तो है तीखा, लेकिन असल में वह घमण्डी है ।"१ चैखुव अपनी लम्बी उँगलियों से 'एशट्रे' इत्यादि को छूते रहे ।

"तब भी गोर्की की महानता का आखिर आप क्या रहस्य मानते

तिखोनोव से वार्तालाप ।१

हैं ?" निरंजन से अपने प्रिय लेखक के विषय में यह सुनकर जैसे रहा नहीं गया।

चेखव अपने प्रवाह में कहते रहे—"टाल्सटाय को भी गोर्की से यही शिकायत है। वे उसकी सारी महानता और प्रतिभा को मानते हुए भी कहते हैं—कि एक लेखक को हर चीज का आविष्कार करने का अधिकार है, लेकिन उसे अपने मनोविज्ञान का आविष्कार नहीं करना चाहिये। लेकिन गोर्की में यही मनोवैज्ञानिक आविष्कार आपको मिलेंगे। वह उन चीजों का वर्णन करता है जिन्हें उसने अनुभव नहीं किया१ और मेरा भी विश्वास यह है कि उस दुख-तकलीफ़ का वर्णन मत करो जिसे तुमने स्वयं अनुभव नहीं किया, और न उस दृश्य का वर्णन करो जिसे तुमने देखा ही नहीं है ! बात-चीत में आपका झूठ निभ सकता है लेकिन एक कहानी में वह सौ गुना भयानक हो उठता है। लेखक की मौलिकता सिर्फ उसकी शैली में ही नहीं, उसकी आस्थाओं और उसके विश्वासों के रूप में भी अपने आपको प्रकट करती है।"२ फिर जैसे निरंजन की बात याद करके पूछा —"हाँ, आप क्या पूछ रहे थे, महानता ? यही सवाल सुम्बातोव ने पूछा था। जब गोर्की का 'निचली गहराइयाँ' मॉस्को में बहुत सफलता के साथ खेला गया तो सुम्बातोव ने गोर्की के नाटकों के बारे में मेरे विचार पूछे। मैंने साफ़ लिख दिया—"मैं समझता हूं उसका "फिलिस्तीन" स्कूली लड़के की रचना है। नाटककार के रूपमें गोर्की की यह विशेषता नहीं है कि लोग उसे पसन्द करते हैं; बल्कि यह है कि रूस में,या कहें सारी दुनियाँ में वह पहला लेखक है जो घृणा और नफ़रत से फिलिस्तीन३ के बारे में

---

२५ अप्रेल १८९९ को गोर्की को पत्र।[1] १८८६ के आसपास अलैक्जेन्ड्र को पत्र।[2] फिलिस्तीनवाद : अपने मत से अलग विश्वास रखने वाले को हिक़रत से देखकर म्लेछ या काफ़िर कहना, —विशेष रूप से जर्मन विद्यार्थियों और नीच काम करने वालों के प्रति घृणा। इज़राइल के सिद्धान्तों की विरोधी विचारधारा।[3]

बताता है–और यह उसने उस ठीक समय किया है जब सारा समाज इसके लिये तैयार था। ईसाइयत और आर्थिक दोनों दृष्टिकोणों से "फिलिस्तीन-वाद" एक पाप है, नदी के बाँध की तरह यह हमेशा गतिरोध पैदा कर देता है; और गोर्की के ये शराबी और गँवार, अवारे, ही इस गतिरोध के खिलाफ सबसे सही इलाज दिखाई देते हैं–हालाँकि इससे बाँध बिलकुल नहीं टूटता; लेकिन एक भयानक दरार उसमें पड़ जाती है! पता नहीं मैं अपनी बात साफ कह पा रहा हूँ या नहीं। एक समय आयेगा जब गोर्की की सारी रचनाएं लोग भूल जायेंगे–लेकिन खुद गोर्की हज़ारों साल तक याद किया जाता रहेगा। यह मेरा उसके बारे में विचार है –हो सकता है मैं गलत होऊँ।"१ चैखव ने बड़े आत्म-विश्वास से कहा –"लेकिन वह मेरा सबसे अच्छा मित्र है–आप गलतफहमी में न पड़िये।" फिर हँस कर बोले–"अभी आपके आनेके पहले ही तो वह आया था–शायद आपको मिला हो।" गोर्की की बातें करते समय उनका मुंह ऐसा उल्लसित हो उठा जैसे अपने बच्चे के विषय में सुनकर बाप का होता है।

हमें अपने आते समय जो आदमी मिला था –वह गोर्की था, यह ध्यान आते ही मुंह से निकल गया –"अच्छा, वह था गोर्की! हमें इतनी देर मे याद ही नहीं आ रहा था कौन है–चेहरा जरूर पहचाना सा लगता था।" फिर थोड़ी देर चुप्पी रही। मेरी जैसे ही निरंजन से आँखें मिली, इशारा किया, चलो काफी देर हो गयी। उठने का निश्चय करके मैंने कहा 'अच्छा अब चलें, काफी समय हो गया, कल आपको जाना है, आपकी पत्नी को भी बुरा लग रहा होगा–आप बीमार हैं, ज्यादा तंग नहीं करना चाहिये!" हम उठ खड़े हुए।

तभी निरंजन ने कहा –"गोर्की के नाटक "फिलिस्तीन" मे कहीं आप इसलिये तो नाराज नहीं हैं कि उसमें काम करते समय आपकी पत्नी ओल्गानिपर की तबियत खराब हो गयी थी?"

सुम्बातोव को २ फरवरी १९०३ को पत्र।[१]

इस पर हम तीनों ही जोर से हँस पड़े। वे बोले —"गोर्की के नाटक में तो पीछे हुई, पहले मेरे नाटक में ही हुई थी। मैंने शायद अभी बताया, एक बार बुरी तरह फेल होकर जब मेरा "समुद्री चिड़िया" दुबारा खेला गया तो सफल रहा; लेकिन तब ही फिर इनकी तबियत खराब हो गयी —ये उसमें आर्कदीना बनी थीं।" फिर हमें बैठने को कह कर वे बोले —"बैठिये, जब नाटकों की बात चलाई है तो इसे ही क्यों छोड़ा जाय॥ यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि मेरा एक भी नाटक मेरे मनके मुताबिक नहीं खेला गया। 'वान्या चाचा' से मैं बीच में ही उठ आया, 'तीन बहनें' को ठीक से नहीं पेश किया गया और 'समुद्री चिड़िया' की असफलता ने मुझे जो अघात पहुँचाया —उसे तो मैं भल ही नहीं सकता। अलैक्जान्द्रिस्की थियेटर में पहली रात जब खूब गुल-गपाड़ा हुआ तो मैं चुपचाप उठकर भागा; सड़कों पर भटकता फिरा और मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे सौ साल और जिन्दा रहना पड़े,मैं आग किसी भी थियेटर को कोई खेल नहीं देनें जा रहा हूँ ! सुबह तीन बजे की गाड़ी से मैंने मिलीखोवो जाने का निश्चय कर लिया था। दूसरे दिन दस बजे जब मैं पत्र लिख रहा था पोतापेंको आया—वह अपनी प्रेमिका लीका मिज़िनोव्ना का समाचार जानने आया था। मैं किसी से नहीं मिला। वह मुझे स्टेशन छोड़ने आया —मैं एक्टर, प्रोड्यूसर, डायरेक्टर, अखबारों और दर्शकों सबसे दूर भाग जाना चाहता था। पहले दिन जब मैं कानोंतक ओवरकोट चढ़ाये चुपचाप थियेटर से मुंह छिपाकर भागा था, तब मैंने सुना था, लोग कह रहे थे —"यह चैखव कौन है ? —कहाँ से निकल पड़ा यह ? नाटक वाले ऐसे रद्दी खेल क्यों लेते हैं?"मैंने तभी निश्चय कर लिया कि बस अब नाटक लिखना खत्म१ —'आगे कभी कोई नाटक मै नहीं लिखूंगा।' मैंने सुवोरिन को लिखा, आगे मेरा एक भी नाटक मत छापो ! इसके बाद से तो मै इतना

१ स्टेशन पर पोतापेंको और चैखव का वार्तालाप ।

डर गया कि मेरे लिये नाटक देखना मुश्किल हो जाता। थियेटर म बैठने मे अधिक आनन्द मुझे किसी दूसरी चीज में नहीं आता है, लेकिन खेल देखने समय मुझे ऐसा खटका रहता जैसे अभी कोई गैलरी से चिल्लाया —"आग! आग।" मुझे अभिनेता अच्छे नहीं लगते।"

"लेकिन दूसरी बार तो यह स्टैनिस्लेव्स्की और नैमीरोविच डंचेंको जैसे समझदार लोगों के द्वारा मॉस्को आर्ट थियेटर में खेला गया था..." मैंने कहना चाहा।

बात काट कर वे बोले—"माफ कीजिये स्टैनिस्लेव्स्की, रूस का सबसे बड़ा मंचविद् समझा जाता है लेकिन जब "समुद्री चिड़िया" का मेरे लिये व्यक्तिगत अभिनय—बिना मंच और सज्जा के हुआ और उसमें स्टैनिस्लैव्स्की ने 'स्वतंत्र इच्छा रखने वाले' व्यक्ति त्रिगोरिन (उपन्यासकार) का जो अभिनय किया उसे देखकर तो मैंने अपना माथा पीट लिया। इससे पहले भी मैं अखबारों के जरिये स्टैनिस्लेव्स्की द्वारा त्रिगोरिन और रॉक्सानोव्ना द्वारा "नीना" के अभिनय की बात पढ़ चुका था—त्रिगोरिन का अभिनय उससे जरा भी नहीं निभता था। यह एक ऐसा चरित्र है जो स्त्रियों को प्रभावित और आकर्षित करता है। किसी 'थियेटर' अभिनेता के लिये उसे निभाना सम्भव ही नहीं है। लेकिन इस अभिनय को देख बार तो मैं इस बुरी तरह चीख उठा—"बन्द करो।" कि बाद में मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ कि मैं कैसे यों चीख सका। यही बाद में "चेरी का बगीचा" खेल का हुआ—स्टैनिस्लेव्स्की ने मेरे लिये तो उस खेल का सत्यानाश ही कर डाला[१] यों वह चाहे जितना सफल रहा हो। अभी पिछले दिनों वह खेला गया—मेरी वर्षगाँठ भी थी। खूब भाषणबाजी हुई।" फिर उन्होंने अपनी बात को जरा सैद्धांतिक स्तर पर लाते हुए कहा— "देखिये रंगमंच पर या नाटक में यथार्थवाद का जरा दूसरा अर्थ होता

---

[१] २९ मार्च १९०४ को ओल्गानिपर को पत्र।

है। मॉस्को आर्ट थियेटर में स्टैनिस्लैव्स्की ने यथार्थवादी माहौल पैदा करनेके लिये कुछ वास्तविक "टच" दिये थे —जैसे मेंढ़क का टरटराना झींगुरों की झनकार या कुत्तों का भौंकना, या सचमुच रोता हुआ एक बच्चा लेकर नौकरानी का स्टेज पर आना। यह सब बेकार है। रंगमंच तो एक कला है। मान लीजिये क्रामोस्कोय द्वारा बनाये गये एक चित्र में आदमी की नाक की जगह आप सचमुच की नाक लगा दें —क्या नतीजा होगा? नाक सचमुच की जरूर लगेगी; लेकिन चित्र का नाश हो जायेगा। स्टेज पर हमें कुछ चीजें मानकर चलना पड़ता है —उदाहरण के लिये चौथी दीवार वहाँ नहीं होती, लेकिन आप उसे स्वीकार करते हैं या नहीं?" फिर जैसे सारी बात को समेटते हुए बोले —"जो भी कुछ हो,और थियेटरों की अपेक्षा 'मॉस्को आर्ट थियेटर' लाख दर्जे अच्छा है। कमसे कम अभिनेताओं को अपना पार्ट तो याद रहता है—अलैक्जान्द्रिस्की थियेटर में तो अभिनेताओं को प्रॉम्प्टर के लिये राह देखनी पड़ती थी। ऐसा लगता है जैसे यह एक स्वयंसिद्ध नियम बन गया है कि हमारे यहाँके ऐक्टर असभ्य और बेपढ़े हों। पढ़ने-लिखने और मेहनत से तो उन्हें कोई मतलब ही नहीं है। जब जरा नये-नये होते है,हाथ-पाँव पटकते हैं, खच्चरों की तरह हिन-हिनाते हैं और जब जरा बड़े हुए फिर तो दिन-रात शराब पीने की वजह से उनका गला और आवाज सब मारी जाती है। वे क्या बकते है कोई सुन ही नहीं पाता।१ इसीलिये जब इसकी —मॉस्को आर्ट थियेटर की स्थापना हुई थी तो मुझे बहुत खुशी हुई कि चलो एक अच्छा थियेटर तो बना।२ जीवन को सुन्दर बनाने के जो भी प्रयत्न होते हैं —उन सबसे मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है।" ३

"तो फिर एक बार हमें भी आपके अपने नाटकों के बारे में पूछने दीजिये।" मैंने पूछा —"कुछ लोग आपको शैक्सपियर के बाद संसार का

अलैक्जेन्द्र तिखोनोव से वार्तालाप।[1] सुवोरिन को पत्र।[2]
स्टैनिस्लैव्स्की द्वारा गोल्त्सेव के दफ्तर का वर्णन।[3]

सबसे बड़ा नाटककार मानते हैं[१] और कुछ के लिहाज मे आपका "चेरी का बगीचा" शैक्सपियर के बाद सबसे अच्छा नाटक है, और "तीन बहनें" जैसा नाटक तो आजतक लिखा ही नहीं गया।"[२]

"देखिये इसी बात से मैं डर रहा था। यह तुलना तो बड़ी खतरनाक है। मैं जब गोर्की के बारे में बात कर रहा था तब भी मुझे यह डर था कि कही आप तुलना तो नहीं कर रहे। गोर्की ने एक बार अपनी पुस्तक मुझे समर्पित करनी चाही। मैंने स्पष्ट कह दिया कि तुम "चैखव को"—बस इसके अलावा कुछ नहीं लिखोगे। और जब मैं उससे यह कहता हूं कि, भौंड़ापन और गालीगलोज तुम्हारी प्रतिभा की मुख्य विशेषता नहीं है, अपनी भाषा में इधर-उधर बिखरी हुई गालियों को जब तुम काट दोगे तब तुम्हारी समझ में यह बात आयेगी —तो इसका मतलब कभी भी नहीं कि मैं उससे अपनी किसी भी माने मे तुलना कर रहा हूं।" फिर हंसकर जैसे याद करते हुए बोले—"एकबार मैंने टाल्सटाय से अपने नाटकों बारे में पूछा, तो वे बोले कि वे शैक्सपियर के नाटकों मे भी बुरे हैं[३] और ओल्या तो मुझे रूसी मोपासां कहती है।[४] अब बताइये कि मेरी और मोपासां की क्या तुलना है? सिवा इसके कि मैंने और उसने बहुत छोटी कहानियॉ लिखनी शुरू कीं —अब इसी बात को लेकर एक सज्जन ने हम दोनों को 'डिकेडैण्ट' बताया और इसे साहित्य में एक नया आंदोलन कहा। मेरा कहना है न कभी कोई 'डिकेडैण्ट' है, न 'डिकेडैण्ट' था। और अगर इन तथाकथित् 'डिकेडैण्ट' या पतनशीलों को लो, तो ये 'पतनशील' नहीं धोखेबाज हैं—सबके सब! सब कूड़ा बेचते हैं! धार्मिकता, रहस्यवाद और भी ऐसी ही बेसिर पैर की बातें! रूसी किसान तो कभी धार्मिक

"नया-जीवन" १ फरवरी १९५४ में श्री जगदीशचन्द्र माथुर का इन्टरव्यू।[१] बर्नार्ड गिलबर्ट ज्यर्नी—'रूसी साहित्य का कोश' पुस्तक में।[२] टाल्सटाय की पत्नी सोनिया के ६-७ नवम्बर १९०१ की डायरी से।[३] नवम्बर १९०१ को ओल्गानिपर का पत्र।[४]

रहा ही नही है; --अपने भीतर के शैतान को तो उसने न जाने कब का निकाल कर फेंक दिया ! ये सब तो उन्ही लोगो ने जनता को भड़काने के लिये खुद बैठकर गढ लिया है ! इनका विश्वास ही नही करना चाहिये !"१ फिर सोचते हुए, जैसे हमसे नही बल्कि सामने कही अदृश्य व्यक्ति को सबो-धित करके बोले --"भाई मेरे, सबसे पहले हमे अपने आपको झूठ से छुड़ाना होगा। कला में यही तो अच्छाई है कि वह झूठ को नही सह सकती ! आप प्रेम में, राजनीति मे, डाक्टरी में झूठ बोल सकते है, लोगों को जितना चाहें धोखे में रख सकते है --यहाँ तक कि खुद को या भगवान को भी ठग सकते है --पर यह ठगी का व्यापार आप कला मे अधिक नही चला सकते।२ जो आप अनुभव करते है, ईमानदारी से कहिये, ईमानदारी से लिखिये ! जोला की मृत्यु ने मुझे काफी धक्का पहुँचाया, --क्योंकि इसका लिखना पसन्द न होते हुए भी मनुष्य की तरह वह मुझे बहुत प्रिय था। तुर्गनेव को इतना पसन्द करते हुए भी उसकी स्त्रियाँ मुझे अस्वाभाविक लगीं। दोस्तायव्स्की मुझे ज़रा भी पसंद नही है ! ये बातें मै साफ कहता हूँ --इब्सन को मैं नाटककार ही नही मानता। जब मॉस्को आर्ट थियेटर ने 'सैबस्टोपोल' में उसका 'हैडा गैबलर' और 'भूत' किये तो मै देखने ही नही गया --बैठा कमरे में पढ़ता रहा। एक तो इब्सन में सादगी का अभाव है, दूसरे वह जिन्दगी को जानता ही नही है।"३ फिर थोड़ी देर रुककर बोले --"आज तो ऐसी अन्धेर-गर्दी फैली हुई है कि कुछ पूछिये ही नही --दावतें उड़ाना, शैम्पेन पीकर जनता की जाग्रति पर, स्वतन्त्रता पर उस समय भाषण देना जबकि संध्या की वर्दी में गुलाम आपकी मेजों के आस-पास मँडरा रहे हों--वे ही गुलाम जिनके लिये यह सब आप बातें कहते है --और सड़क पर कोहरे और बरफ में बाहर कोचवान अपने मालिकों की

अलैक्जेन्द्र तिखोनोव से वार्तालाप।[१-२]

स्टैनिस्लैव्स्की का वर्णन।[३]

राह देख रहे हैं, यह है आज का फैशन —यह भयंकर पाप नहीं है?"१ फिर जैसे अपने इस अनावश्यक और अप्रासंगिक जोश के प्रभाव को कम करते हुए चैखव ने कहा—"मैं मानता हूँ कि विरोध हैं और रहेंगे। लेकिन हमलोग एक दूसरे को समझने की कोशिश भी तो कहाँ करते हैं? हम-लोग सब मिलकर बैठें, एक दूसरे को समझें, जरूरत इसकी है......।"

"अगर मैं भूल नहीं करता तो कुछ-कुछ शायद इसी उद्देश्य को लेकर", मैंने याद करते हुए कहा—"आपने एक "क्लाइमैटिक स्टेशन" या आश्रम जैसी चीज लेखकों के लिये यूक्रेन प्रान्त में बनाने का प्रयत्न किया था।"

"वह आश्रम!" चैखव हँस पड़े, जैसे अपनी बचपन की कोई बेवकूफी की चीज याद करके हँसे हों —"बिल्कुल तो नहीं—लेकिन कुछ-कुछ यही उद्देश्य जरूर थे, अधिकांशतः वह टाल्सटाय के उपदेशोंसे प्रभावित रहने की स्थिति की बात थी—जब सुवोरिन की घनिष्ठता की वजह से मैं प्रगति-शील दल के साथ नहीं आया था। साहित्य में दलबन्दियाँ देख कर मुझे बड़ा दुख होता था। लियोन्तियेव को मैंने लिखा था—हम सभी लोग न तो एक ही तरह सोच सकते हैं, न अनुभव कर सकते हैं—क्योंकि हम सभी के लक्ष्य या तो बिल्कुल अलग हैं—या कहिये लक्ष्य हैं ही नहीं। एक दूसरे को हमलोग जानते ही नहीं —और यही कारण है कि हमें कोई चीज एक जगह इकट्ठा नहीं कर सकती —एक नहीं बना सकती। यह ठीक है कि उसका जो उपचार मैंने आश्रम के रूप में सोचा था, वह गलत हो; लेकिन बातें मैं सभी ठीक मानता हूँ। सचमुच क्या हम एक बन जाना चाहते हैं? —मेरा खयाल है, नहीं।२ अपने साथी लेखक की सहायता करना, उसकी रचनाओं और उसके व्यक्तित्व का आदर करना, उसकी सफलताओं से न कुढ़ना या उसके बारे में दुनियाँ भर की बातें न फैलाना —उससे झूठ न बोलना या उसके सामने आडम्बर न खड़ा करना इस सबके लिये सबसे

---

१९ फरवरी १८९४ को चैखव की डायरी।[१]

३ मई को लियोन्तयेव को पत्र।[२]

ज्यादा जरूरत है इन्सानियत की ! –हम बहुत साधारण आदमी सही– लेकिन जरा अपने साथियों की तरफ यह रुख कर लें। इससे कम से कम यह बनावटी अकेलापन तो वे अपने चारों तरफ नहीं महसूस करेंगे। लेखकों की छोटी-सी संख्या में भी यह दूरी और अकेलापन पैदा कर देनेका नतीजा हो जाता है –शक, शुबहा–अवांछित जासूसी, नियन्त्रण१ यह सब हमारे न चाहते हुए भी हमें मार डालता है। और जितना ही हम एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, एक दूसरे की सहायता करते हैं, उतना ही हम एक दूसरे का सम्मान करते हैं। इससे हमारे सम्बन्ध सत्य पर अधिक आधारित होते जाते है। मैं जानता हूँ, भविष्य में हो सकता है इससे हम सबको ही अधिक प्रसन्नता न हो, लेकिन ऐसी भविष्यवाणी की भी जरूरत क्या है कि हमारे जीवन में सुख और संतोष आयेगा ही नहीं। यही कारण था कि मैं आपस में निकट आने पर जोर दिया था।"२ इस बार उन्होंने फिर नयी सिगरेट जला कर कहा –"इन्हीं सब बातों के लिये, लिखने वालों को रहने आदि की सुविधा के लिये हम यूक्रेन के गाँवों में समागिन की जिमींदारी की तरफ गये।"

"लेकिन इस आश्रम का विचार आपने क्यों छोड़ दिया ?" निरंजन बोला–"हमारे यहाँ तो अब भी "आश्रमों" और "तपोवनों" को ही लोग संसार की सब बुराइयों से छूट जाने का मार्ग बताते हैं –कोई कहता है हरद्वार जाओ, कोई कहता है कैलाश जाओ !"

"अरे छोड़िये भी, सब बकवास है।" चैखव ने हाथ झटक कर कहा– "देखो दोस्त, मेरा विकास बड़े विचित्र ढंग से हुआ है। जब मैं सुवोरिन के साथ था –जो निश्चय ही रूसी अभिजात-वर्ग का प्रतिनिधि था –तो धीरे-धीरे मेरे विचार "लिबरल" या उदारपंथियों की ओर बढ़े –लेकिन सुवोरिन की दोस्ती की वजह से मुझे उसके पत्र "नवयुग" से काफी दिन चिपके रहना पड़ा। और जब मैंने अपनी रचनाएँ उदारपंथी "रूसी-विचार"

लियोन्तियेव को पत्र।[१] बरान्त्सेविच को पत्र ३० अप्रैल १८८७।[२]

आदि में छपाई, तब मैं धीरे-धीरे बढ़ रहा था –गोर्की इत्यादि के पत्र "जीवन" की ओर। यह आश्रम वाला फितूर तो सुवोरिन के सम्पर्क की देन थी –जो टाल्सटाय इत्यादि उदारपंथियों के प्रभाव से दूर हुआ, और मैंने समझा कि लेखकों के बीच की इस भयंकर खाई का मूल कारण प्रतिक्रियावादी खेमें द्वारा किया जाने वाला विचारों का निर्मम दमन है –सुवोरिन भी उसी खेमे का एक व्यक्ति था। और बाद में जब मैंने यह समझ लिया कि अहिंसा या सत्याग्रह मे कोई पाप दूर नहीं किया जा सकता तो इस "आश्रम" के भूत ने मेरा पीछा छोड़ा।"

"यह बड़ी विचित्र बात है कि गोर्की कट्टर मार्क्सवादी पत्र 'जीवन' में लिखता था, टाल्सटाय का 'उदारपंथियों' का अपना खेमा अलग था और आप सुवोरिन के मित्र थे –तब भी आप तीनों में ऐसे सम्बन्ध थे –हम लोग तो इस सबको सोच भी नहीं सकते।" मैंने आश्चर्य से कहा।

"भाई, अपनी तो में कहता हूँ" चखव ने आश्वस्त वाणी में कहा –"मैंने अपने भीतर के गुलाम की आखिरी बूंद तक निचोड़ फेंकी थी, और जीवन जैसा है उसे ज्यों का त्यों ग्रहण किया था। शायद स्कैबिशेवस्की ने कहा था कि मैं छोटी-छोटी चीज पर लिख कर अपनी प्रतिभा नष्ट कर रहा हूँ। लेकिन सच मानिये, उन लोगों से मुझे शुरू से डर रहा है जो उदार पंथी या रूढ़िपंथी –इन खेमों में मुझे बॉट कर देखना चाहते हैं। –मैं साधु, सन्त, उदार, रूढ़ कुछ भी नहीं हूँ –इसलिये इन लेबिलों को दुराग्रह मानता हूँ। ये 'ट्रेडमार्क' खतरनाक हैं। मेरी पवित्रतम अराध्य है मानवता, मनुष्य शरीर –स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, प्रेम और मुक्ति –झूठ और द्वेष से मुक्ति ! १ लोग मुझ से पूछते हैं कि मैं ऐसा लिख कैसे लेता हूँ? –उसकी यह वजह है कि जीवन को मैंने बहुत ही सहज रूप में ग्रहण किया है। इसीलिये जैसे चिड़िया गाती है उसी तरह मैं लिखता हूँ, बैठूंगा और लिखने लगूंगा, बिना ज़रा भी यह सोचे कि कैसे लिखना है, किसके बारे

१८८९, अक्टूबर को प्लैश्चयेव को पत्र।[१]

में लिखता हूं। मेरे विषय अपने आप मुझसे लिखवा लेते हैं।—कहानी, स्कैच या कुछ भी लिखने में मुझे ज़रा भी महनत नहीं पड़ती। बछड़े या बछेड़े की तरह हरे, खुशनुमा घासके मैदानों में वे उछलते फिरते हैं —मैं खुद हँसा हूं और मैंने उन्हें हँसाया है, अपने चारों ओर ! मैंने जीवन का आलिंगन किया है, और बिना सोच-विचार में अधिक समय बर्बाद किये, उसके साथ इधर से उधर लुढ़का हूं। मैंने जीवन को नोचा, कोंचा, गुदगुदाया उसकी पसलियों में, उसके कुचों में उंगलियाँ गड़ाई हैं—पेट में घूंसे मारे हैं—इससे मुझे काफी खुशी महसूस होती रही है।१ मैं सिर्फ एक कलाकार हूँ और इसके सिवा कुछ नहीं बनना चाहता।"२

"इसका मतलब तो यह है कि आपको अपने आलोचकों का काफी शिकार बनना पड़ा होगा। क्योंकि चाहे कालनिन ने आपके बारे में यह लिखा सही कि 'तत्कालीन रूसी जीवन की जितनी सही, सच्ची और जीवित तस्वीर आपने दी है, वह कोई महान लेखक ही दे सकता है' और उसके लिये चाहे खुद गोर्की आपको देवता की तरह पूजता हो, लेकिन आपने अपने और गोर्की के बारे में जो बातें कही हैं, उसे सुनकर ही हिन्दुस्तान का कोई भी कठमुल्ला—और बहुत प्रचलित शब्दावली लूं तो 'कुत्सित समाज-शास्त्री' आलोचक बिना आपको पढ़े, छूटते ही कह देगा कि 'चैखव गया है'।" मुझे चैखव पर अपना एक व्यक्तिगत वार्तालाप याद आ गया।

"हो सकता है वही सही हो, लेकिन आलोचक ?" चैखव जोर से हँस पड़े—"पच्चीस साल से मैं अपनी आलोचनाएं पढ़ रहा हूँ लेकिन मुझे एक भी ऐसा वाक्य याद नहीं आता जिसने मुझे जरा भी फ़ायदा पहुँचाया हो, या जो जरा भी काम का हो। —एक भी ढंग की सलाह नहीं। हाँ, स्कैबिशेव्स्की का एक वाक्य मुझे हमेशा याद रहेगा—बस वही

गैत्रोव द्वारा 'चैखव' पर चैखव के विचार —'रूसी साहित्य का कोण' पुस्तक से।[१] प्लैदचयेव को पत्र।[२]

अपनी छाप छोड़ गया है। उसने मेरी किताब की आलोचना करते हुए कहा था कि मेरी मृत्यु शराब के नशे में 'धुत्' किसी नाली में पड़े हुए होगी।" वे फिर हँस पड़े।

आलोचक की इस भविष्यवाणी पर बिना हँसे हमसे भी नहीं रहा गया। चैखव बता रहे थे—"इन आलोचकों को तो आप घोड़े को तंग करने वाली मक्खियों की तरह समझिये। घोड़ा काम में जुटा है, खेत जोत रहा है, उसके पुट्ठे सप्तम स्वर के तार की तरह तने हैं, मक्खी आती है उसके बाजू पर बैठकर छेड़ती है, भनभनाती है। घोड़ा खाल छटकता है, पूंछ फटकारता है—काम में खलल पड़ता है। अच्छा,—यह मक्खी खुद ही नहीं जानती कि आखिर भनभना किस लिये रही है? सिर्फ वह व्याकुल इसलिये है कि सारा संसार जान जाये,—'देखो मैं भी तो जिन्दा हूँ—देखो, मैं किसी न किसी के बारे में कुछ न कुछ तो भनभना ही सकती हूँ।' ये आपके आलोचक हैं।"१ फिर थोड़ा रुककर वे शायद अपनी 'मूर्ख' कहानी को याद करते रहे, जिसमें एक मूर्ख सब कुछ लिखने में असफल होनेके बाद में भयंकर आलोचक बन गया था।

फिर बोले—"और आलोचकों को ही हम क्यों दोष दें? आप साहित्य के कर्णधार इन भारी भरकम पत्रों को ही लीजिये। मजाक बना रखा है।२ कोई उन्हें नहीं पढ़ता। पढ़ना ही नहीं चाहिये। सब 'मित्रों का साहित्य' बना रखा है उनको,—और मित्रों के लिये वह लिखा भी जाता है। कोई न कोई राम श्याम, गोविन्द उन्हें लिख डालते हैं एक ने लिखा, दूसरे ने उसका विरोध किया, तीसरे ने उनके विरोधों में सामंजस्य या समन्वय करा डाला, चलो छुट्टी हुई। जैसे हर आदमी एक पुतला बना कर घूंसेबाजी करता है—मजा यह है कि कोई भी इनमें से नहीं पूछता कि पाठकों का इससे क्या लाभ है?"३ चैखव ने मुंह बना कर कहा

"चैखव टालसटाय और एंद्रीव के मेरे संस्मरण" गोर्की की पुस्तक पृष्ठ १०५।[१-३] २३ जनवरी १८८२ को प्लेश्चयेव को पत्र।[२]

—"जब इन पत्रों के सम्पादक बैलिन्स्की, हैरजन जैसे लोग थे —तब लिखने का भी कुछ मजा था। सम्पादन एक दृष्टिकोण से होता था। उनसे आप कुछ सीखते थे, शिक्षा लेते थे—आज तो टुटपुंजिये लोग पत्रों के सम्पादक हो गये हैं१ —"फिर जैसे मजाक उड़ाते हुए बोले —आज 'रूसी मिचार' के सम्पादक कौन है ? गोलत्सेव एण्ड कम्पनी ! जिनके विचार से नये लेखक कोई बड़ी चीज लिख ही नही सकते, और उन्हें उसका कारण यह पता लग गया है कि नये लेखकों में विचारों की गहराई ही नहीं है। उनका रोना हमेशा यही है कि हमारा वर्तमान जीवन किसी भी अच्छे उपन्यास और कहानी के लिये कथानक दे ही नहीं सकता —क्योंकि" चैखव ने मजे में नकल उतारते हुए कहा—"क्योंकि हमारा जीवन और साहित्य एक बड़े भारी संक्रांति काल से गुजर रहा है !"२

मुस्करा कर मैंने कहा—"यह संक्रान्तिकाल का रोना तो हमारे यहाँ भी बड़े जोर से रोया जाता है—लगता है हर साहित्य में हर समय कुछ लोगों का पेशा होता है जो चीख और चीख कर कहते हैं। —हमारा साहित्य संक्रांति काल मे गुजर रहा है ! और यह मान कर फिर वे 'मूल्यगत-संक्रमण' की खोज करने उतरते है।"

चैखव ने कहा —"बकवास ! हो सकता है ये गोल्त्सेव वगैरा अच्छे आदमी हों; लेकिन रूस को ये क्या देंगे ?—ये देंगे 'विधान', आदेश। मुझे सहानुभूति सिर्फ इनसे इसलिये है कि इनमें भी कमियाँ है, उन्होंने भी जीवन में कष्ट सहे है —इसलिये नहीं कि वे बड़े भारी आदमी है या सम्पादक हैं ! लेकिन यह महसूस किये बिना मुझसे नहीं रहा जाता कि ये लोग घुटन पैदा कर रहे है और उस झूठ में सिर से पाँव तक डूबे हुए हैं जो किसी ने गढ़कर इनके हाथ में पकड़ा दिया है। मॉस्को के हमारे ये सम्पादक साहित्यिक "दैचशन्द" हैं। लम्बे शरीर, छोटे पाँव और नुकीले

१८८८ को कवि पोलोन्स्की को पत्र।[1]

चैखव का लीकन को पत्र।[2]

नथुने वाला "दैचशन्द" दोगले कुत्ते और मगर के मिश्रण से होता है और ये लोग प्रोफेसरों और जड़-प्रसिद्ध व्यक्तियों (Dull witted man of letters) के संयोग से उत्पन्न वर्ण-संकर हैं।"१

बीच का कटु –प्रसंग आ जाने से थोड़ी देर चुप्पी रही, फिर वे खुद ही बोले –"इसीलिये मैं नये लेखकों से कहता हूँ –लिखो, लिखो, खूब लिखो। –इतना लिखो कि तुम्हारी उँगलियाँ दर्द कर उठें ! जितना लिख सकते हो लिखो, यह समझ कर नहीं कि तुम्हारे बौद्धिक-विकास के अनुकूल है या नहीं, –बल्कि यह समझ कर लिखो कि तुम्हारी आधे से अधिक रचनाएं लौट आयेंगी –इन अस्वीकृत 'रचनाओं' से हताश मत होओ, –अगर तुम्हारी आधी भी रचनाएँ लौट आती है तो तुम्हारे लिये बहुत है। अच्छा, बुरा हास्य, रुदन –जो भी विषय तुम्हें मिले –तुम लिखो। ज्यादा चलते विषयों को मत लो ! जहाँ तक लेखक के गौरव का प्रश्न है, पता नहीं आप क्या सोचते हैं –लेकिन मैं तो बहुत पहले से अपनी कहानियाँ वापिस पा जाने का अभ्यस्त हो चुका हूँ।"२

"ज्यादा लिखने का क्या मतलब ?" मुझसे पूछे बिना नहीं रहा गया –"क्या लेखक सुबह ही कागज तोलकर बैठ जाय, कि इतना लिखकर ही उठूंगा ?"

निरंजन और चेखव दोनों हँस पड़े, बोले–"मेरा मतलब सिर्फ मेहनत से है, ढेर लगाने से नहीं। ज्यादा लिखने वाला तो मैंने एक लेखक देखा है 'पोतापेंको'। मुझसे चार साल बड़ा था; गंभीर बात करने वालों का -कल्ला और साहित्यकी शाश्वत समस्यायें सुलझाने वालों को मेरी तरह बहुत बनाता था –हमेशा हँसी-मजाक ! उसके साथ आप अपने को जीवित अनुभव करने लगें। आदमी लेकिन बड़े कमाल का था –इतना भयंकर लिक्खाड़ कि खुदा की पनाह ! तब मैंने समझा कि भयंकर रूप से इतना

जिस लेखक के माध्यम से चेखव मोलत्सेव से मिले थे–उसे पत्र।[१]
सितम्बर १८८६ में मेरिया कैसीलेव को पत्र।[२]

अधिक और इतना लिखना भी भगवान की ही देन है। वह पट्ठा, बिना जरा भी रुके, बिना जरा भी करैक्शन किये—एक दिन में सोलह पृष्ट लिख सकता था। एक बार तो पाँच दिन में उसने ११०० रूबल कमाए।"

"बस, सोलह ही पृष्ठ ?" मैंने निराशा से कहा —"सोलह पृष्ठ कुछ भी नहीं है। हमारे हिन्दुस्तान में तो अस्सी-अस्सी पृष्ठ दिन भर में लिख डालने वाले मौजूद हैं, —चालीस-साठ पृष्ठ लिखना तो उनकी दिन चर्चा है —उन्हें कभी 'करैक्शन' की जरूरत ही नहीं पड़ती।"

चैखव जैसे आसमान से गिरे—"अस्सी ? लेकिन आपको मालूम है पोतापैंको के लिये सुवोरिन ने डायरी में क्या लिख रखा था ?—"भयंकर लिक्खाड़ —लेकिन 'थिर्ड रेट' लेखक ! 'शायद उसकी यह 'थर्डरेटनैस' ही इस भयंकर उत्पादन का कारण थी।"

अब निरंजन से बिना पूछे नहीं रहा गया, —"आप आजकल कितना लिख रहे हैं ?"

"मैं ?" चैखव ने कहा —"मेरे लिखने की कुछ न पूछिये। आजकल तो ज्यादा लिखा ही नहीं जाता,अभी पिछले साल 'सगाई' कहानी खत्म की थी। वह और 'चैरी का बगीचा' मैंने चार लाइनें एक दिन के हिसाब से लिखे थे—और इसमें भी काफी कष्ट होता था। "आइवानोव" का पहला रूप मैंने दस दिन में लिख डाला था। यों मुझे हमेशा अपने आप से शिकायत रही है कि साहित्यके लिये मुझमें न तो उत्साह है,न प्रतिभा। मेरे भीतर जो आग जलती है —वह बड़ी मन्द और निर्बल है —वह बिना लपट और चटख के जलती है। यही वजह है कि मुझसे एक रात में चार-पाँच से अधिक पृष्ठ लिखे ही नहीं गये।...... खैर उन दिनों की बात छोड़ दीजिये क्योंकि उन दिनों में आत्मा में 'गतिरोध' सा अनुभव करता रहता था।[१] अपनी लिखने की गति के अलावा लिखने से भी मुझे काफी शिकायत रही है। मेरी निगाह में मेरी एक भी ऐसी लाइन नहीं है जिसका गंभीर साहित्यिक

मार्च १८८९ के आस-पास सुवावोरिन को पत्र।[१]

महत्व हो। अपने अतीत में मैंने काफी कड़ा परिश्रम किया है; लेकिन उसमें गंभीर काम का एक भी मिनट नहीं है। ईमानदारी से, मेरी बड़ी प्रबल इच्छा होती है कि पाँच साल को कहीं भाग जाऊँ और कहीं फावड़ा चलाने में वक्त गुजारूँ। मुझे अपना काम सीखना है, –और बिलकुल शुरू से सीखना है, क्योंकि एक साहित्यिक के नाते मैं बिल्कुल कोरा हूँ। मुझे अपनी इच्छा के अनुसार लिखना है, परिश्रम और उत्साह से लिखना है। एक महीने में पाँच पृष्ठ नहीं, बल्कि पाँच महीने में एक पृष्ठ लिखना है। मुझे घर छोड़ देना चाहिये, और सात-आठ सौ रूबल वार्षिक पर रहना चाहिये बीस-पच्चीस हजार पर नहीं जो मैं अब कर रहा हूँ (जब यह पत्र लिखा गया था तब वास्तव में चैखव ने ३-४ हजार बताये थे, *लेकिन जिस काल का यह वार्तालाप है उस समय वे मार्क्स को अपनी रच*-नाएँ ७५००० रूबल में बेच चुके थे। इस सौदेको रद्द कराने के लिये गोर्की ने तर्क रखा था कि चैखव का वार्षिक खर्च २०,००० रूबल वह साहित्यिक चंदे से इकट्ठा करेगा–ले०) इन हजारों झंझटों से अब मैं मुक्ति चाहता हूँ, लेकिन डर मुझे यही है कि साहस की अपेक्षा मेरे भीतर यूक्रेनियन लोगों का आलस्य बहुत है।१ मेरा परिवार बहुत बड़ा था और मुझे पैसे के लिये ही लिखना पड़ा इस चीज ने मुझे बहुत कष्ट दिया है।" चैखव ने फिर नयी सिगरेट जलाई और चुपचाप पीने लगे।

घड़ी ने दस बजाये, तो हमलोगों ने उठते हुए कहा–"*अभी क्या* है, आपका आपका लिखने का असली समय तो अब आया है। अभी तो आप बहुत लिखेंगे............"

"नहीं, अब तो मैं मरने जा रहा हूँ।" शुरू की बात को उन्होंने फिर ज़रा *व्यथित मुस्कुराहट से दुहराया और अचानक हँसते हुए बोले* –"और अगर बुड्ढा भी हो गया तो और भी आफत है, अभी तो मैं पाँच बजे उठता हूँ फिर चार ही बजे उठ आया करूँगा। यह मैंने ध्यान दिया है कि

दिसम्बर १८८९ में सुवोरिन को पत्र।[१]

सुबह जल्दी उठने वाले बड़े उत्पाती होते हैं। मेरे पुरखे मुर्गे की बाँग से पहले ही उठ पड़ते थे। यही मुझे भी लगता है कि बुड्ढा होकर मैं भी काफी उपद्रवी और चुलबुला बनूंगा।"१

हमलोग भी हँस पड़े। उठकर हाथ जोड़ते हुए हमने कहा –"आज आपका बहुत समय बर्बाद किया, लेकिन बहुत सी बातें मालूम हो गयीं –अब आज्ञा दीजिये।"

"समय की बर्बादी की भी कुछ न पूछिये।" हँसकर वे आधे उठ आये–"अब तो लिखना बन्द है, वर्ना जब लिखता था तो समय बर्बाद करने वाले लोगों और अतिथियों, दर्शनार्थियों के मारे परेशान था। कभी-कभी तो जीवन से घृणा हो जाती थी। वही बेवकूफी की लम्बी लम्बी बातें दुनिया भर की समस्याएँ लेकर लोगों का आना –उन लोगों के मारे मैं इतना ऊब गया था कि उत्तरी ध्रुव पर भाग जाना चाहता था –लेकिन दिक्कत यह थी कि मैं बिना लोगों के जीवित भी नहीं रह सकता –जब अकेला होता था तो ऐसा लगता था जैसे किसीने प्रशान्त महासागर में उठाकर फेंक दिया हो।"२

इस पर फिर हँसी का कहकहा उठा। अभिवादन करके जब हमलोग उनके निवास स्थान से बाहर आये तो निरंजन बोला –"यह तो मानना पड़ेगा, बुड्ढा है जिन्दादिल –"

"जिन्दा दिल नहीं होता तो इतनी बीमारियों के होते हुए इतना लिखता और घूमता कैसे ?" मैंने बताया–"इसकी जिन्दादिली ही तो इसे जिन्दा रखे हुए है।"

"लेकिन, मित्र, तेज भी बहुत है।" निरंजन ने हँसकर कहा –"देखो, चलते-चलते भी तुम्हारे इतनी देर बैठने पर टाँच मार गया। और तू भी तो वहाँ ऐसा जमकर बैठ गया कि हिलने का नाम ही नहीं लेता था।"
"अरे यार, मैंने तो उठने की बहुत कोशिश की लेकिन बात का तार ही

ओर अवसर पर सुवोरिन को पत्र।[1] जून १८८९ को सुवोरिन को पत्र।[2]

नहीं टूटा –पट्ठा, एक में से से एक बात निकाल लेता था। और बीच में यों छोड़ कर चले आना बद्‌तमीजी थी।"

"हुँह" ! निरंजन झुंझला गया–"तुम तो आये थे 'इन्टरव्यू' लेने–ले लिया 'इन्टरव्यू ?' – दुनिया भर की रूसी साहित्य की जनमपत्री खोल दी।"

"अरे –तू बड़ा अजब आदमी है ?" मैं चलते-चलते रुक गया और आश्चर्य से उसकी ओर देखकर बोला –"इन्टरव्यू में अब क्या कसर रह गयी ? सभी कुछ तो पूछ लिया।"

"अच्छा, चलते-चलते बात करो, देर हो गई है।" उसने मुझे धक्का दिया,–फिर बोला –"ऐसा 'इन्टरव्यू' होता होगा ? दुनिया भर की मतलब-बेमतलब की बातें कर दीं –कैसे खाते हो, कैसे रहते हो ? अरे मतलब-मतलब की बातें पूछते, जवाब लिखते और फिर चल भैया।"

"यानी यों कि आप कब पैदा हुए, कैसे लिखना शुरू किया,साहित्यिक विचार क्या है ? प्रेरणाएँ क्या रही है ?–एँ ?" मैंने अनजान बनकर पूछा, "और क्या ? हम तो 'इन्टरव्यू' का यही मतलब समझते हैं। दुनिया भर की बातें पूछने से क्या है ? तुम्हारी तरह ही सब इन्टरव्यू लेने लगें; तो पहले तो उसकी, उसके मित्रों की सारी किताबें पढ़लें,फिर उससे 'इन्टरव्यू' करने जायें। इतनी महनत की जरूरत क्या है ?" निरंजन बोला।

"तो एक बात बताऊँ। इस सबकी भी क्या जरूरत है कि मिलने जाओ आओ –समय निश्चित करो –वगैरा-वगैरा ? कुछ प्रश्न बना लिये उन्हें टाइप कराके हरेक के पास भेज दिये –जवाब आ गया –अपने नाम से छपा दिया –चलो छुट्टी हुई।"

"अरे –यही तो तुम नहीं जानते, मित्र।" मेरे कन्धे पर हाथ मार कर वह बोला–"बड़े आदमियों से मिलने जाने में बड़े-बड़े फायदे हैं। लोग तो उस बड़े आदमी के साथ अपनी फोटो अखबारों-किताबों में

छपा-छपाकर मशहूर हो जाते हैं--जिस भले आदमी ने जिन्दगी में कभी उन्हें देखा भी न हो—और तू उन्हें मिलने भी नहीं देगा....कम्बख्त !....."

:o: :o: :o: :o:

मैं अभी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि बड़ी जोर से कुछ गिरने का शब्द हुआ और मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा —सारी नींद और सपना गायब हो गया। देखा तो ऊपर की आलमारी से चूहों ने एक किताब गिरा दी है जो ठीक मेरे सिर के पास आकर पड़ी —जरा बच गया, नहीं तो चटनी हो जाती। चौंक कर देखा तो किताब थी —'इन्टरव्यू : एक कला'। माथा ठोक लिया। अगर चूहा इसे कल संध्या को ही गिरा देता तो शायद सपने का यह 'इन्टरव्यू' कुछ कलापूर्ण हो जाता ! अब उठकर जो देखता हूँ तो चारों तरफ किताबें बिखरी पड़ीं थीं —एक तरफ गोर्की की "मेरे चैखव, टाल्सटाय और एन्द्रीव के संस्मरण" थीं तो दूसरी ओर "चैखव के पत्र" तीसरी ओर "चैखव की जीवनी" थी तो एक ओर "रूसी साहित्य का कोश" एक ओर कान्सटैन्स गारनैट' की अनुवादित चैखव की रचनाओं का विशाल ढेर था। और जिस किताबको मैं पढ़ते-पढ़ते सो गया था —मेरी छाती पर डैविड मैगार्शक की "चैखव : एक जीवनी" किताब खुली रखी थी —उसे हटाते समय जिन लाइनों पर मेरी निगाह गयी वे गोर्की की लाइनें थी। जर्मनी में मरने के बाद चैखव का शव मॉस्को लाया गया —"उसकी शव यात्रा के पीछे केवल सौ आदमी मुश्किल से थे। उनमें से दो वकील तो मुझे अभी भी याद हैं, दोनों नये जूते और रंगीन टाइयाँ पहने थे और दूल्हों से लग रहे थे। पीछे चलते हुए मैंने सुना उनमें से एक कुत्तों की बुद्धिमत्ता पर बहस कर रहा था और दूसरा अपने गाँव के घर के आराम तथा आस-पास के दृश्यों का बखान कर रहा था।"

गोर्की के इस क्रूर व्यंग्य से मैं तिलमिला उठा !

—